

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182167

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रदर्शनी

(सामाजिक तथा मौलिक कहानियों का संग्रह)



लेखक

श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'



अगस्त १९४९

मुद्रक
के. एन. भार्गव
स्टार प्रेस, महात्मा गांधी रोड,
कानपुर,

H2091
H 83.1
D 53P

प्रथम संस्करण
मूल्य २।।।)

प्रकाशक
बिनोद पुस्तक मन्दिर,
आगरा ।

समर्पण

हिन्दी संसार की सुपरिचित लेखिका

अपनी धर्मपत्नी

श्रीमती सीतादेवी बी. ए. 'हिन्दी प्रभाकर'
को

कहानियों की प्रदर्शनी

आप प्रदर्शनी में अपनी इच्छित वस्तु
ढूँढ लेते हैं। यह कहानियों की प्रदर्शनी है;
अपनी इच्छित कहानियों को ढूँढकर देखिये
कि वे आपको क्यों पसन्द हैं ?

गयाप्रसाद पुस्तकालय

कानपुर

स्वतंत्रता दिवस

१५ अगस्त १९४९

} श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'

प्रदर्शनी

साड़ी की
साध

(१)

लखनऊ में प्रदर्शनी की धूम थी; जी न माना।
रानी से बोला 'लखनऊ चलोगी ?'

'क्यों'

'यों ही। प्रदर्शनी देखने।'

रानी कुछ सोचकर बोली, 'नहीं।'

मैंने साश्चर्य पूछा, 'क्यों ?'

वह बोली, 'रुपये कहां से आयेंगे ? आखिर बिना
रुपयों के प्रदर्शनी जाने से लाभ ?'

मैं बोल उठा 'उहँ, रुपये भी आ जायेंगे। तुम्हारे
पास जो साड़ी के रुपये रखे हैं, उन्हीं को खर्च कर देंगे।
फिर देखा जायगा।'

—साड़ी की साध

रानी सिर हिलाकर बोली 'रहने दीजिये अपनी प्रदर्शनी । मैं अपनी साड़ी के रुपये खर्च न करूंगी ।'

मैं मुस्कराकर बोला, 'तो फिर क्या साड़ी के पीछे प्रदर्शनी भी न देखी जाय ? साड़ी फिर कभी आ जायगी ।'

रानी स्फुट-स्वर में बोली, 'साड़ी का महत्व आप लोग क्या जानें । मैंने कितनी कठिनता से १११) रुपये जोड़े हैं । जब पूरे ५०) हो जायंगे तो झट वैसी ही साड़ी खरीद लूंगी जैसी सरला भाभी के पास हैं । आप लखनऊ चले जायं, मेरा तो जाना न हो सकेगा ।'

मैं मुस्कराकर बोला 'अच्छा यदि बिना वे रुपये खर्च किये लखनऊ चलूं तब तो चल सकोगी ?'

रानी के अधरों पर मुस्कान की रेखा दौड़ गयी ।

(२)

प्रदर्शनी का निराला ठाठ देखा । हवाई जहाज, दौड़ने वाले छोटे छोटे स्कूटर, सुविस्तृत तालाब में दौड़ते हुए स्टीमर, छोटी-सी रेलगाड़ी, खेल-तमाशे आदि सब कुछ तो था । बाजारों में सामान इतना पटा पड़ा था कि बुद्धि चकरा-सी गयी । छोटी छोटी भव्य एवं आकर्षक दूकानें ग्राहकों की भीड़भाड़ से इतनी सुन्दर मालूम पड़ती थीं मानों सारे संसार का व्यापार, क्रय-विक्रय तथा ग्राहक-वर्ग किसी कलाकार ने एक स्थान पर चित्रित कर दिये हों । संध्या के समय ऐसा प्रतीत होता था मानों वस्त्राभूषणों से युक्त कोई रमणी मुस्करा रही हो ।

प्रदर्शनी—

रानी का तो बुरा हाल था। प्रत्येक वस्तु पर वह निगाह जमाती, इधर-उधर देखती तथा व्याकुल-सी होकर आगे बढ़ जाती। एक बुन्दे की जोड़ी तो उसे इतनी अच्छी लगी कि वह पूछ ही तो बैठी 'कितने की होगी यह बुन्दे की जोड़ी ?'

दूकानदार ने उसकी ओर शीर से देखा और बोला 'ले लीजिये मांजी। लगभग ७५) की होगी।'

रानी एक सांस लेकर आगे बढ़ गयी। कदाचित् साड़ी खरीदने की आकांक्षा ने उसकी सभी अभिलाषाओं पर विजय पायी।

रास्ते में वह बोली 'बुन्दों की जोड़ी बड़ी बढ़िया है। जी चाहता है.....।'

बात काटकर मैं बोल उठा 'तो फिर खरीद लो न ? कुल ७५) की तो है ही।'

रानी बोली 'मेरे पास रुपये कहां हैं ?'

मैं बोल उठा 'साड़ी वाले रुपये.....'

रानी बोली 'वे रुपये खर्च नहीं किये जा सकते। चलिये, आगे बढ़ें।'

और वह आगे बढ़ गयी। मैंने सोच लिया कि साड़ी रानी के मन में घर कर गयी है, वह बिना उसे लिये रह नहीं सकती।

जब होटल पहुँचे तो रानी बोली 'अब लौट चलें कानपुर।'

क्यों' आश्चर्य के साथ मैंने पूछा ।

रानी बोल उठी 'धूम तो चुके प्रदर्शनी । ये बातें तो बड़े आदमियों के लिए हैं । हमारे जैसों के लिए इतना ही धूमना पर्याप्त है ।

मैं बोला 'यह खूब रही । यदि पैसा न हो तो किसी चीज को देखे भी नहीं ।'

रानी बोली 'मेरा तो अब मन नहीं लगता, अब लौट चलिये ।'

दूसरे दिन सवेरे हम कानपुर लौट आये ।

(३)

अंत में रानी साड़ी खरीदकर ही मानी । घर में साड़ी क्या आयी मानों सारे संसार का वैभव आ गया हो । वह उसे खोलती, देखती, दूसरों को दिखलाती तथा करीने से तहाकर संदूक में रख देती । ऐसा मालूम पड़ता था कि संसार की सारी वस्तुएँ साड़ी के सामने हेय हैं । रानी इतनी प्रसन्न थी कि यदि सचमुच उसे कोई तौलता तो एकाध पौंड की वृद्धि उसके वजन में अवश्य पाता ।

मैंने कहा, 'इतनी प्रसन्नता !'

रानी मुस्कराकर बोली, 'ऐसी ही है यह साड़ी ।'

मैं बोला, 'तुम्हारी साध तो पूरी हो गयी, किन्तु उसे जरा पहिनकर भी तो दिखाओ ।'

रानी सिर मटकाते हुए बोली, 'न, अभी नहीं । होली

प्रदर्शनी—

के मेले पर पहिन्गी । तभी देख लेना । अभी पहिनकर खराब न करूंगी ।’

मैं रानी का मुंह देखता रह गया ।



कुछ दिनों बाद मुझे सरकारी काम से देहरादून जाना पड़ा । मैंने रानी से कहा ‘देहरादून चलती हो ?’

रानी बोली ‘कहो तो चली चलूं ।’

मैंने मुस्कराकर कहा ‘यदि नई वाली साड़ी पहिनने का वादा करो तो तुम्हें देहरादून की सैर करा सकता हूँ ।’

रानी मुंह बनाकर बोली ‘भाड़ में गया तुम्हारा देहरादून । मैं उसके लिए अपनी साड़ी न खराब करूंगी, तुम्हीं हो आओ ।’

मैंने कहा ‘साड़ी इतनी प्रिय है तुमको ।’

रानी दृढ़ता के साथ बोली, ‘जी जान से भी ज्यादा ।’

हमलोग देहरादून गये । मार्ग में मैंने रानी को समझाया ‘संसार में किसी भी वस्तु के प्रति मनुष्य को इतना राग न रखना चाहिए । मानव-धर्म का अभिशाप तो लिप्सा ही है न रानी । सारी वस्तुएँ यहीं रह जाती हैं जब वह अचानक किसी ऐसे स्थान को चल देता है जहां से वह फिर लौटता नहीं । आकर्षण, लिप्सा, मोह और अनुराग की भी तो एक सीमा होती है ।’

रानी सिर हिलाकर बोली, ‘अपना उपदेश अपने ही

पास रखिये । मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मैं अभी मरने की नहीं । मैं तो सभी सुख भोगकर ही मर सकूंगी । आप इस धोखे में भी न रहें । मैं साड़ी किसी और (हंसकर) के पहिनने के लिए न छोड़ जाऊंगी ।’

(४)

किन्तु रानी बड़ी झूठी निकली । रास्ते ही में एकाएक उसकी तबियत खराब होने लगी तथा कानपुर पहुंचते-पहुंचते यम—मृत्यु—का खरीता लेकर आ पहुँचा ।

अंदर रानी का शव पड़ा हुआ था और बाहर ‘कि कर्त्तव्य विमूढ़’-सा बैठा हुआ मैं उस अघटनीय घटना का रहस्य जानने की विफल चेष्टा कर रहा था जिसे आज तक कोई न जान सका था ।

बाहर अंतिम-यात्रा की तैयारियां हो रही थीं और अन्दर रानी के शव का शृंगार किया जा रहा था, क्योंकि सधवा स्त्रियों के दाह-कर्म के पूर्व शृंगार करने की अरुचिकर प्रथा-सी है ।

भाभी ने बाहर आकर रोते हुए कहा, ‘चलो भैया, एक बार उसे चलकर देख तो लो ।’

मैं धीरे से अन्दर गया । बीच आंगन में रानी का शव वस्त्राभूषणों से अलंकृत पड़ा हुआ था ।

मैं पागलों की भांति बोला, ‘नहीं भाभी, नहीं, मुझे इसका शृंगार पसंद नहीं है ।’

सब लोग आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे । मैं

प्रदर्शनी—

दौड़कर अंदर पहुंचा अपने कमरे में, और रानी की वही साड़ी निकाल लाया ।

साड़ी को भाभी की ओर बढ़ाते हुए मैं बोला, 'लो, इसे यह साड़ी पहिना दो ।'

भाभी साश्चर्य बोलीं, 'यह क्या भैया । तुम क्या कह रहे हो ?' मैं बोला 'ठीक कह रहा हूं । इसने होली पर इस साड़ी को पहिनने का वादा किया था । आज होली है भाभी ।'



साड़ी रानी के साथ ही चली गयी । वह उसे पहिने हुए चिता पर भी बड़ी सुन्दर लग रही थी ।

खोटा सोना

(१)

राजेश्वर अपना सब कुछ लुटाकर भी अमृत कुंवरि को न पा सका । वह शिक्षित, सभ्य, सुन्दर तथा संपन्न सभी कुछ था, किन्तु जितना ही वह अमृत के निकट आने की चेष्टा करता गया उतना ही वह उससे दूर हटती गयी । अमृत के पीछे ही उसने नगर में अपना सम्मान खोया, पिता की संपत्ति से वंचित हुआ तथा स्वास्थ्य से हाथ धोया ।

उसने अमृत से कहा, 'मैं तुम्हारा हूँ अमृत !'

अमृत मुँह बनाकर बोली 'किन्तु मैं तुम्हारी न हो सकूंगी ।'

पिटे-से मुँह से राजेश्वर बोला 'क्यों ?'

अमृत ने उत्तर दिया था, यों ही । मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ राजेश्वर कि मेरी आशा छोड़ दो ।

प्रदर्शनी—

क्यों मुझे व्यर्थ में बदनाम करने का बीड़ा उठाये हुए हो ?'

राजेश्वर बोला, 'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ अमृत !'

मुँह बनाकर अमृत बोली, 'मुझे प्रेम में विश्वास नहीं। इस तरह तो आजकल सड़कों पर लोग कहते फिरते हैं।'

राजेश्वर बोला 'तो क्या मेरे प्रेम का प्रमाण चाहती हो ?'

अमृत रोष में हाथ जोड़कर बोली, 'दया करिये आप मुझपर, मैं लाख बार आपसे कह चुकी कि मेरा पीछा छोड़िये।'

क्षणभर चुप रहकर राजेश्वर बोला, 'अच्छी तरह सोच लो अमृत ! तुम एक सच्चे प्रेम को ठुकराकर उस व्यक्ति की ओर....।'

बात काटकर अमृत बोल उठी, 'आपका मतलब कदाचित् मदनलाल से है। यही न ?'

धीमे स्वर से राजेश्वर बोला, 'तो क्या मदनलाल को आप इस योग्य समझती हैं कि.....।'

अमृत बोल उठी, 'निश्चय ही मैं मदनलाल को आपसे अधिक निकट समझती हूँ।'

एक लम्बी सांस लेकर राजेश्वर बोला, 'अच्छी बात है। तो फिर मैं चलूँगा।'

अमृत ने व्यंग भाव से हाथ जोड़ दिये।

(२)

मदनलाल भी राजेश्वर का सहपाठी था। उसके पिता लाहौर के सिटी मजिस्ट्रेट थे और राजेश्वर के पिता थे नगर के एक सभ्रान्त व्यापारी। मदनलाल में एक अप-टु-डेट व्यक्ति की सभी विशेषताएँ थीं। मदिरा-सेवन, सिनेमा का सेवक, वेश-भूषा तथा प्रेम-संभाषण सभी में दक्ष था। उसके पीछे कालेज की तितलियां दौड़ लगाती रहती थी जिनमें से अमृत भी एक थी।

राजेश्वर सीधे-साधे स्वभाव का था, सभी प्रकार के व्यसनों से दूर। अमृत के पिता उसके दूर के संबंधी भी थे तथा दोनों का बंगला पास ही पास था। अमृत और राजेश्वर का बाल्य जीवन परस्पर खेल-कूद में व्यतीत हुआ था और उसी समय से राजेश्वर और अमृत में प्रेम का अकुर उत्पन्न हुआ था। किन्तु आज की शिक्षिता अमृत पहिले की सी भोली भाली बालिका न थी। ज्यों ज्यों उसके पांव खुलते गये त्यों त्यों वह उड़कर राजेश्वर से दूर होती गयी। राजेश्वर बहुत दिनों से यह सब कुछ अनुभव कर रहा था। उसने एक दिन अपना प्रेम उंडेलकर अमृत के सामने रख दिया।

अमृत ने मुह बनाकर कहा 'तुम्हारी यह मजाल राजेश्वर ! अब खबरदार। मुझसे इस प्रकार बात न करना।'

राजेश्वर अपना-सा मुँह लेकर चुपचाप लौट आया।

प्रदर्शनी—

राजेश्वर के पिता ने जो यह हाल सुना तो आग बबूला होकर बोले, 'उस ठेकेदार की लड़की के साथ मेरे लड़के का विवाह ! खबरदार जो ऐसी बात मुंह से निकाली लड़के ।'

अंत को राजेश्वर अपनी बात पर अड़ ही गया । पिता ने विवाह के लिए जोर दिया और राजेश्वर ने साफ इन्कार कर दिया । पिता ने उसे संपत्ति से वंचित करके घर से निकाल दिया ।

अमृत ने सभी कुछ सुना तो मुह बनाकर बोली, 'तो मैं क्या करूं ? मैं उस महाजन के कंगाल लड़के से विवाह नहीं कर सकती ।'

अमृत के पिता ने जो सुना तो बोले, 'अमृत के लिए क्या राजेश्वर ही रह गया है ।'

अंत में अन्तिम बार अमृत से मिलकर राजेश्वर ने बात करने की चेष्टा की, किन्तु उससे रूखा उत्तर पाकर उसका हृदय कचोटकर रह गया ।

वह लाहौर से अमृतसर चला गया । पढ़ा लिखा तो था ही, एक स्थानीय कालेज में उसे प्रोफेसरी का पद मिल गया । अमृत का चित्र सामने लगाकर वह उपासना में अपना समय व्यतीत करने लगा ।

इधर मदनलाल के पिता का भी तबादिला अमृतसर हो गया, किन्तु आने के पहिले अमृत और मदन का विवाह पक्का हो गया । राजेश्वर ने सब कुछ सुना, किन्तु चुप रह गया ।

। (३)

इधर लगभग एक महीने से लाहौर में साम्प्रदायिक दंगे की आग सुलग रही थी, किंतु १५ अगस्त के बाद तो मानों मानवता लुप्त-सी हो चली थी। लूट-मार, अग्निकांड कत्लेआम, व्यभिचार तथा अन्य नृशंस तथा रोमांचकारी कुकृत्यों का दानव तांडव-नृत्य कर रहा था। सारे पंजाब में आग लगी हुई थी। पाकिस्तान मिल जाने से मानों लाहौर के हिन्दुओं का सभी कुछ मुसलमानों का हो चुका था—धन-दौलत, औरत-बच्चे सभी कुछ।

अमृत का घर भी इधर दो दिनों से गुंडों ने घेर रखा था। अमृत के पिता ने गिड़गिड़ाकर गुंडों से प्रार्थना की, 'सभी कुछ ले लीजिये, किन्तु मेरी, मेरी स्त्री, दो लड़कियों तथा एक लड़के की जान बख्श दीजिये।'

हंसकर एक गुंडे ने कहा, 'अबे बनिये के बच्चे, माल तो हमारा है ही, तेरी जवान लड़कियां भी हमको चाहिए। हम उन्हें अपनी बीबियां बनायेंगे।'

गुंडों ने बंगला लूट लिया। अमृत के भाई और पिता को कत्ल कर दिया गया तथा अमृत और उसकी छोटी बहिन सरला को गुंडे अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए उठा ले गये।

इधर राजेश्वर के पिता और उसके परिवार की भी यही दशा हुई। मकान लूटकर फेंक दिया गया और सारा परिवार मौत के घाट उतार दिया गया।

प्रदर्शनी—

गुंडों ने अमृत तथा उसकी बहिन पर सभी प्रकार के अत्याचार महीनों किये। न जाने कहाँ कहाँ ले जाकर उन्हें रखा गया और न जाने कितने गुंडों ने अपनी काम-पिपासा को तृप्त किया। अंत में गुंडों ने दोनों को रावलपिंडी के एक मुसलमान सेठ के हाथ बेच दिया।

राजेश्वर का हृदय शोक और क्षोभ से भर गया। उसका सभी कुछ नष्ट हो गया था। उसने शरणार्थियों की सेवा का व्रत किया। उसने न जाने कितने शरणार्थी अपने को खतरे में डालकर पश्चिमी पंजाब से निकाले। भारत-सरकार के शरणार्थी विभाग में उसने अपने को अर्पित कर दिया। वह हवाई जहाज लेकर जाता और एक साथ कई परिवारों को निकालकर लाता। उसने अमृत के लिए बड़ी खोज की किन्तु सब व्यर्थ।

एक दिन उसको अमृत की खबर लगी। वह सीधा रावलपिंडी पहुँचा। किन्तु वहाँ पहुँचकर उसे मालूम हुआ कि वहाँ किसी हिन्दु या हिन्दु-स्त्री का नामो निशान भी न था।

वह निराश होकर लौटा। उसे पता चला कि शेखूपुरे में भी १०-१५ परिवार मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं। राजेश्वर के आत्माभिमान ने यह गवारा न किया कि वह लौट जाय। तीन चार साहसी व्यक्तियों के साथ वह शेखूपुरा पहुँचा।

वहाँ जो दृश्य उसने देखा उससे उसका हृदय कांप

उठा। सारा शहर श्मशान बना हुआ था। उसने सुना कि कई हजार हिन्दू मौत के घाटे उतार दिये गये तथा हिंदू और सिक्ख स्त्रियों को नंगा करके उनका जुलूस निकाला गया।

राजेश्वर का खून खौल रहा था। वह किसी प्रकार भी इन स्त्रियों का उद्धार करना चाहता था। लोगों ने उसे समझाया कि वह मौत से खेल रहा है, किन्तु राजेश्वर दृढ़ ही रहा।

उसने अपना मुसलिम भेष बनाया तथा एक मुसलिम गुंडे को लालच देकर अपनी ओर मिलाया।

गुंडे ने कहा 'मेरा सारा परिवार अमृतसर में फंसा हुआ है, अगर आप उसे निकाल देने का वायदा करें तो मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ।'

राजेश्वर ने कहा, 'मैं अपनी जान खतरे में डालकर तुम्हारे परिवार को बचाऊंगा।'

अब्दुल्ला की आँखों में आँसू आ गये। वह बोला, 'मेरी तीन जवान बेटियाँ भी हैं साहब।'

राजेश्वर बोला 'तुम घबड़ाओ मत अब्दुल्ला। मैं तुम्हें अपने साथ अमृतसर ले चलूंगा।

थोड़ी देर बाद राजेश्वर ने कहा, 'सुना है यहां बीस हिन्दू औरतों का नंगा जुलूस निकाला गया था।, '

दबी हुई जवान से अब्दुल्ला बोला 'जी हाँ।'

एक लम्बी साँस लेकर राजेश्वर बोला, 'वे कहाँ हैं ?

क्या उन्हें नहीं बचा सकते अब्दुल्ला ?'

क्षणभर सोचकर अब्दुल्ला बोला '४-५ को तो मैं जानता हूँ, अगर आप हिम्मत करें तो मैं आज ही उनसे आपको मिला सकता हूँ। मगर आपको मुसलमानी भेष में चलना पड़ेगा।'

राजेश्वर राजी हो गया। अब्दुल्ला बोला 'देखिए बाबूजी, यह बड़े खतरे का काम है, अगर भेद खुल गया तो आपके साथ मुझे अपनी जान भी देनी पड़ेगी।'

राजेश्वर बोला 'तुम श्रवड़ाओ मत। मैं ठीक ही काम करूंगा।'



नरक-कुण्ड-सा मोहल्ला। इधर उधर सड़ी हुई लाशें पड़ी हुई। मौत-सा सन्नाटा।

एक मकान के एक कमरे में ५ स्त्रियाँ बुरी तरह से बैठी और लेटी हुई थीं। लिखते संकोच हो रहा है कि वे वस्त्र-हीना थीं। ऐसा मालूम होता था कि अब उनके लिए संसार में लज्जा नाम की कोई वस्तु रही ही नहीं है। पास ही लंगोट पहिने दो गुडे बैठे कुछ बात कर रहे थे। सामने शराब से भरे दो गिलास रखे थे।

उनमें से एक बोला 'अब आज की रात के बाद इन्हें ठिकाने लगा देना ही ठीक है।'

दूसरा बोला 'अब इनमें रहा ही क्या है। फिर इनके कल का सवाब क्यों न लिया जाय।'



इतने ही में दरवाजा खोलकर एक और भयानक-सी शक्ल का मुसलमान वहां आया।

उनके पास बैठता हुआ बोला 'आज रात में एक मुझे भी चाहिए।'।

इस पर एक बोला 'हां-हां, जितनी चाहो, ले जाओ। कल तक तो इन्हें ठिकाने ही लगा देना है।'।

इस पर अभी का आया हुआ गुंडा बोला 'बेबकूफ हो। मैं तो इन्हें बेच दूंगा।'।

एक ठहाका लगाकर दूसरा बोला, 'अरे इन्हें अब पूछेगा कौन? बिक सकें तो बेच दो तुम्हीं।'।

हाल का आया हुआ गुंडा बोला, 'मैंने एक ग्राहक ठीक किया है। मगर पांचों के ५० रुपये से ज्यादा देन को तैयार नहीं है।'।

इस पर दोनों बोल उठे, 'हां-हां, अभी हटाओ इन कमबस्तों को। हम लोग तो जी भरकर मजा ले चुके।'।

अभी हाल में आये हुए ने चुपचाप बंडी की बगल से पचास रुपये के नोट निकाले और कहा, 'इन्हें अभी पहुंचाये देता हूं। मगर ले कैसे जाऊं। जगह जरा दूर है।'।

एक बोला, 'पैदल ले जाओ हरामजादियों को।'।

थोड़ी देर बाद वह उन औरतों को लेकर बाहर आया और बगल से चमचमाता छुरा निकालकर बोला, 'अगर चुपचाप मेरे साथ न चलीं तो यहीं जिबह कर दूंगा।'।

मृत्यु की छाया मुंह पर लिए हुए वे पीले चेहरे वाली

पांचों औरतें चुपचाप उसके पीछ चल दीं।

सड़क पर मौत का सन्नाटा था। थोड़ी दूर जाने पर सामने से एक मोटर आती दिखलायी दी। गुंडे ने छुरा चमकाकर उसे रोक देने का इशारा किया।

मोटर रुक गयी। ड्राइवर ने बिगड़कर कहा, 'मोटर क्यों रोकी?'

गुंडे ने कहा 'माफ करना। इन हरामजादियों को मौलवी नबी बागू के यहां पहुंचाना है। वे इन्हें इस्लाम में दाखिल करेंगे।'

ड्राइवर बोला, 'मुझे उनका मकान नहीं मालूम।'

औरतों को मोटर पर चढ़ाते हुए वह बोला, 'कोई बात नहीं। मैं पता जानता हूं।'

मोटर चली। काफी दूर जाने पर वह बोला, 'बस रुको'

मोटर रुक गयी। औरतों को उतारकर वह बोला, 'शुक्रिया। अब ले जाओ।'

मोटर चली गयी। आसपास बिल्कुल जंगल था। वह औरतों को लेकर एक डेरे के पास पहुंचा। दरवाजे पर आवाज लगायी 'बाबूजी!'

एक फौजी व्यक्ति पिस्तौल लिए बाहर निकला और टार्च की रोशनी उसके चेहरे पर डालकर बोला, 'कौन? अब्दुल्ला।'

‘जी’ उसने कहा ।

औरतें चुपचाप खड़ी थीं । उसने टार्च की रोशनी उनके मुंह पर डाली और बोला पांच हैं । हैं ! कौन ! अमृत ।’

और एक औरत बेहोश होकर गिर पड़ी ।

(४)

राजेश्वर बोला ‘मदनलाल यहीं पर हैं । यदि चाहो तो उनके पास तुम्हें पहुंचा सकता हूं अमृत !’

अमृत पलंग पर लेटी हुई थी । वह फफक-फफककर रो पड़ी ।

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए राजेश्वर बोला, ‘घबड़ाओ मत अमृत । सब ठीक हो जायगा ।’ अमृत चुपचाप पड़ी पड़ी रोती रही ।

राजेश्वर ने कहा, ‘तुम्हें अमृत ने बुलाया है मदन ।’

मदन चौंककर बोला ‘अमृत ! क्या बक रहे हो राजेश्वर । वह कहां से आ गयी ।’

राजेश्वर बोला ‘वहीं चलो । सब मालूम हो जायगा ।’

मदन बोला, ‘मैं नहीं जाऊंगा राजेश्वर । पचासों कामियों के चूसे हुए ग्रास को अब कौन मुंह में रखेगा ।’

राजेश्वर रोष में आकर बोला, ‘क्या बकते हो मदन ।

इसमें इन अपहृता नारियों का क्या दोष ?’

मदन ने पास रखी हुई साइकिल उठायी और यह कह

कर चल दिया, 'अब तुम्हीं अपना मुंह काला करो। मदन
ऐसा उल्लू नहीं है।'

राजेश्वर अमृत के पास आकर बोला, 'मदन से किसी
प्रकार की आशा नहीं है।'

अमृत के आंसू बह रहे थे।

राजेश्वर ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा,
'मैं तुम्हारा हूं अमृत।'

एकांगी नारी

(१)

मेट्रोपालिटन गर्ल्स कालेज की प्रिंसिपल मिस मनोरमा अपने चिड़चिड़े स्वभाव के लिए शहर भर में बदनाम थीं। सुन्दर रूप, गोरा रंग, एकहरा बदन, लम्बे लहराते हुए केश सभी कुछ उनके पास था, किन्तु यदि कोई उनसे बात करता तो मालूम पड़ता था कि वे उसे काट खायेंगी। अवस्था अभी २५ से अधिक न थी फिर भी अपनी अनुभूतियों पर उन्हें गर्व था। वे प्रायः कहा करती थीं कि 'पुरुषों को जहां जरा मुंह लगाया, बस झट आगे बढ़े।'।

विवाद-स्वरूप जब कभी उनकी सहेली उनसे कह देती कि 'बिना पुरुष के स्त्री का काम भी तो नहीं चलता' तो वह झट उत्तर दे देती कि 'तुम्हारा न चलता होगा, दुनियां भर की ठेकेदार तो तुम नहीं हो।'।

वह कहती, 'तो क्या वास्तव में तुम पुरुषों से नफरत करती हो मनोरमा ?'

प्रदर्शनी—

मिस मनोरमा कह देती 'मुझे पुरुषों से नहीं, किन्तु उनके व्यवहारों से घृणा है । बड़ी बदतमीज होती है यह कौम ।'

सहेली कहती, 'मुझे तो ऐसा अनुभव नहीं है । एक से एक व्यवहार-कुशल पुरुष देखे हैं मैंने ।'

मनोरमा कहती, 'जिस पुरुष से बात करो, वह झट निकट आने की चेष्टा करता है । मैं तो बहुत सख्त हूं इस विषय में—जरा कोई आगे बढ़ा और मैंने डांटा ।'

सहेली मुस्कराकर बोली, 'तो फिर किसी न किसी को तो कभी आगे बढ़ने ही दोगी मिस साहिबा !'

मनोरमा बोल उठी, 'धत्, मुझे इस प्रकार की बातें पसंद नहीं हैं ।'

सहेली बोल उठी, 'तो फिर क्या कभी विवाह ही न करोगी ?'

मनोरमा बोली, 'यह मेरी इच्छा पर है । जिसे पसंद करूंगी वह अपने आप दौड़ा आयेगा । पुरुष तो इस लिए उधार खाये-से रहते हैं ।'

हँसकर तथा फिर बाद में गंभीर होकर सहेली ने कहा, 'यह तुम्हारा भ्रम है मनोरमा । प्रत्येक बात की सीमा हुआ करती है । कहीं धोखे में न पड़ जाना ।'

मनोरमा मुंह बनाकर बोली 'समय आयेगा तो दिखला दूंगी तुम्हें ।'

सहेली बोली, 'अच्छी बात है । किसी दिन ठोकर

खाकर ही तुम्हारी आंखें खुलेंगी ।’

(२)

‘यूनियन क्लब’ के सदस्यों में परस्पर बातचीत चल रही थी ।

रमेश ने कहा, ‘मिस मनोरमा का आज का किस्सा सुना आप लोगों ने ?’

सुरेन्द्र बोल उठा, ‘क्या ?’

रमेश बोला, ‘सबरे वे तांगे पर बैठकर कहीं जा रही थीं । रास्ते में कहीं भूल से तांगेवाले का हाथ उनसे छू गया । झट उसके दो चप्पल उतारकर लगा दिये । तांगेवाला बिचारा मुंह देखता रह गया उनका । काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी । तांगेवाला हाथ जोड़कर कहता था कि ‘मैं गरीब आदमी हूं, मेरी इतनी हिम्मत की बहूजी से इस तरह का वर्ताव करूं ?’

मिस मनोरमा चिल्ला चिल्लाकर कह रही थी कि ‘इसने जान-बूझकर मेरे शरीर से हाथ लगाया है । बदमाश कहीं का !’

बड़ी मुश्किल से झगड़ा शान्त हुआ । लोग तांगेवाले की बात का विश्वास कर रहे थे, और आखिर करते ही क्या ?

किस्सा सुनकर सुरेन्द्र बोल उठा, ‘उसकी बड़ी बदनामी है । बात करते ही काटने दीड़ती है । न जाने अपने को क्या समझती है ?’

अभिराम बोल उठा ‘मेरी एक बहिन पढ़ती है उसके

कालेज में । एक दिन मैं इसी संबंध में उससे मिलने गया । आध घंटा तो बाहर बैठा लेखा और फिर नौकरी से पुछवा भेजा । क 'क्या काम है ?' मुझे बहुत बुरा लगा । मैंने कहलवा दिया कि 'आपसे मिलना है,' झट ताव में बाहर आकर बोली, 'जल्दी कहिये, क्या काम है ?'

मैं कुर्सी से खड़ा होकर बोला 'आपसे कुछ बातें करनी हैं ।'

वह खड़े ही खड़े बोली 'कहिये न ?'

मैं बोला, 'मेरी बहिन कमला क्लास में कुछ कमजोर चलती है । आपसे कुछ सलाह चाहता हूं ।'

वह आंखें चढ़ाकर बोली, 'यह भी कोई काम है । मुफ्त में आप लोग मेरा समय नष्ट करने आ जाते हैं ।'

और वह चली गयी । मैं चकित रह गया, और थोड़ी देर में उठकर चला आया ।

रमेश ने कहा, 'पुरुषों से न जाने क्यों भड़कती है । आखिर किसी से तो बात करती ही होगी ?'

अभिराम ने कहा 'ऐसी स्त्रियां छुपी रुस्तम होती है । जब कहीं'

सुरेन्द्र बोला, 'यह बात तो तुम्हारी गलत है अभिराम । इस विषय में उसकी कोई शिकायत नहीं है ।'

हंसकर अभिराम ने कहा, 'तुम अभी बच्चे हो सुरेन्द्र ! बड़ी बड़ी औरतें देख डालीं । इनके विषय में भी कभी न कभी सुनने में आ जायगा ।'

सुरेन्द्र बोला, 'इन बातों में क्या धरा है अभिराम ?
उससे बिपटना जरा टेढ़ी खीर है ।'

अभिराम ताव खाकर बोला, 'अगर पीछे पड़ जाऊं तो
नाक रगड़वाकर छोड़ूँ देवीजी की ।'

सुरेन्द्र समझ रहा था कि अभिराम पर पानी चढ़
रहा है, बोला, 'गप्प मत उड़ाओ, तुम्हीं को उसने निकाल
बाहर किया उस दिन ।'

अभिराम बोला, 'अच्छा तो फिर देख लेना एक दिन ।'

सुरेन्द्र मन ही मन प्रसन्न होता हुआ बोला, 'देख
लिया है ।'

बात यहीं तक रह गयी ।

(३)

अभिराम भी साधारण व्यक्ति न था । जिसके पीछे
पड़ जाता था, उसे परेशान करके ही छोड़ता था ।
घर का बहुत ही सम्पन्न था, अतएव उसके पास
समय भी खूब रहता था ।

क्लब से लौटकर उस दिन वह इसी उधेड़ बुन में
रहा । उसे आधीरात तक नींद न आयी । उसका
स्वभाव था कि वह जिस उलझन को लेकर बिस्तरे पर
लेटता था जब तक उसको हल न कर लेता अथवा
उसको हल करने का कार्य-क्रम न बना लेता तब तक सो न
सकता था ।

दूसरे दिन सवेरे ही वह ठाठ-बाट से कालेज के सेक्रेटरी

मि० एम० के० दास के यहां पहुँचा ।

मि० दास जानते थे कि वह नगर के रईस पंडित बट्टी-नाथ का लड़का है । उन्होंने उसकी आवभगत करते हुए कहा, 'कहिये, कैसे कष्ट किया ।'

अभिराम बोला, 'बहुत दिनों से मेरा इरादा आपके कालेज को कुछ दान देने का है । मैं आपके कालेज के संबंध में सब कुछ जानना चाहता हूँ ।'

प्रसन्न होकर मि० दास बोले, 'अच्छी बात है । आपको सारी रिपोर्ट दूंगा । आपही जैसे धनी मानी व्यक्तियों के भरोसे तो कालेज चलता है । और (इधर उधर देखकर) आपके लिए कुछ जलपान मंगवाऊं ?'

अभिराम ने कहा 'नहीं मि० दास । मैं चाय पीकर आया हूँ ।'

थोड़ी देर बाद अभिराम घर चले आये । वे अपने मन में प्रसन्न थे ।

तीन चार दिन बाद अभिराम को नौकर ने लाकर काई दिया । उस पर लिखा था—

मिस मनोरमा एम० ए०

प्रिंसिपल

एम० कालेज

अभिराम मुस्कराया । और नौकर से बोला 'देवीजी कहां है ?'

नौकर बोला, 'बैठक में हैं हुजूर ।'

अभिराम ने क्षणभर कुछ सोचा और लेटर-पेपर उठाकर कुछ लिखने लगा। लिखने के बाद उसने एक लिफाफे में उसे रख दिया और उस पर लिख दिया—

मि० एम० के० दास

सेक्रेटरी

एम० कालेज

कुछ सोचकर वह रुका और फिर उसने अलमारी से अपनी चेक-बुक निकाली। पांच हजार का एक चेक काटकर एक नया पत्र और लिखा, तथा लिफाफे से पुराना पत्र निकालकर फाड़ डाला।

लिफाफा बन्द न किया गया था। लिफाफे को नौकर को देते हुए उसने कहा, 'देवीजी को यह लिफाफा जाकर दे दो और कह देना, इस समय बाबूजी को फुरसत नहीं है, फिर कभी सेक्रेटरी साहब से मिल लेंगे।'।

मिस मनोरमा बैठक में बैठी हुई सोच रही थीं, 'बड़े बदतमीज आदमी हैं। मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रही हूँ और उन्हें अभी तक मिलने की फुरसत नहीं है? आयें भी तो मैं बहुत बात न करूँगी उनसे। वे तो ज्यादा बात करना ही चाहेंगे। डेविल !'

उसी समय नौकर ने आकर उनके हाथ में मालिक का पत्र रख दिया। सेक्रेटरी के नाम पत्र देखकर वे और भी कुढ़ गयीं, किन्तु संभलकर बोलीं, 'बाबू आयेंगे?'

नौकर सिर हिलाकर बोला 'उनको तो कतई फुरसत

नहीं हैं। उइ सिकत्तर साहब से मिलि हैं। आप जाव ।’
मनोरमा क्रोध से जल-भुन गयी। इतना अपमान !
वह उठकर चल दी।

अपने बंगले में आकर वह लेट गयी और बड़बड़ाने लगी
अपने को लाट साहब समझते हैं बाबूजी। मैं क्या
करूं.....अगर सेक्रेटरी साहब.....

और उसे याद आया कि लिफाफा तो खुला हुआ
है। उसने झट लिफाफा अपने बेग से निकाला और पढ़ने
लगी। उसमें लिखा था:—

प्रिय मि० दास,

आपने प्रिंसिपल को मेरे यहां भेजा, उसके
लिए मैं कृतज्ञ हूं, किन्तु मैं जरा औरतों से बात करने का
आदी कम हूं। समय पाकर मैं फिर आपसे स्वयं मिल
लूंगा।

फिलहाल आपको (५०००) का एक चेक कालेज की
सहायतार्थ भेज रहा हूं। इसके बाद कालेज का हिसाब
देखकर कुछ और सहायता कर सकूंगा।

आपका

अभिराम

पत्र पढ़कर तो मनोरमा के पसीना आ गया। वह
होंठ काटती हुई बड़बड़ाई, ‘इतनी शान ! औरतों से मिलना
भी पसंद नहीं करते !’

अभी तक मनोरमा की धारणा थी कि सभी पुरुष

औरतों से मिलने के लिए उधार खाये रहते हैं, किन्तु आज वह यह अनुभव कर रही थी कि ऐसे भी पुरुष हैं जो उससे अवसर पाकर भी मिलना पसन्द नहीं करते ।

(४)

और मनोरमा के भी एक हृदय था और उस हृदय में थीं स्त्रियोचित भावनाएँ । वह कभी कभी अपने इस नीरस जीवन से ऊबने लगती । दिन रात स्त्रियों से बात करते करते कभी कभी वह कुछ अन्य प्रकार का अभाव भी अनुभव करने लगती थी । नीरस और अकेला जीवन तो अभिशाप है ही, फिर क्यों न मनोरमा उसका शिकार बने वह दूसरी स्त्रियों को अपने पतियों के साथ घूमते देखती, अपनी अध्यापिकाओं को सखी और पारिवारिक जीवन से संतुष्ट देखती तथा उनके बच्चों को चौकड़ियाँ भरते देखती तो दिल मसोसकर रह जाती ।

अब वह किसी पुरुष के निकट जाना चाहती थी, उसका हृदय भी जीवन के आनन्द का रसास्वादन करने के लिए रह-रहकर मचलता था, किन्तु वह स्वयं इन सबके दूर जा पड़ी थी । कोई भी पुरुष उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखता था; लोग कहते 'लड़ाका है, चिड़चिड़ी है, इस बदमिजाज औरत से कौन बात करे ?' किसी पब्लिक-पार्टी में जब वह निमंत्रित होकर जाती तो उसकी मेज के पास पुरुष तो पुरुष कोई स्त्री भी भूलकर न बैठती । अन्य स्त्रियाँ तो मर्दों के पास मेजों पर बैठतीं और उनके साथ

बातचीत का आनन्द लेतीं। मनोरमा अकेली बैठी बैठी चाय के प्याले से खून के घूट-सी पीती रहती।

मनोरमा धीरे धीरे अपने जीवन से तंग आ चली थी। वह देखती कि लड़कियों के माता पिता कालेज आते और अन्य अध्यापिकाओं से बातचीत करके लौट जाते। वह कुठती, किन्तु सोचती कि आखिर इसमें दोष किसका है ?

ऐसे ही अवसर पर अभिराम ने उसे धक्का पहुँचाया। यह चोट उसके मर्मस्थल पर लगी। वह सोचने लगी कि 'आखिर मैं करूँ तो क्या करूँ ?'

दूसरे दिन वह अभिराम का पत्र लेकर सेक्रेटरी के घर गयी तथा उन्हें पत्र दे दिया।

मि० दास उसे पढ़कर बड़े प्रसन्न हुए तथा चेक को मिस मनोरमा को देते हुए बोले, 'लीजिये, इधर कालेज में रुपयों की बहुत कमी थी। आप यदि उनसे एक बार फिर मिलें तो और अधिक लाभ हो सकता है। मैं वृद्ध आदमी हूँ, अब अधिक चल फिर नहीं सकता।'।

फिर कुछ सोचकर बोले, 'आपने भी कभी इस ओर प्रयत्न नहीं किया मिस मनोरमा। लोगों से मिलने रहने ही से काम निकलता है। मुझे खेद है। इतने वर्ष हो गये, कभी कालेज के लिए आप एक पैसा भी किसी से न ला सकीं। इस प्रकार कब तक काम चलेगा ?'

मिस मनोरमा नीचा सिर किये चुप रही। मि० दास बोले, 'मि० अभिराम को एक दिन आमंत्रित करके उन्हें

अपना कालेज दिखलाइये तथा उनसे और रुपया देने की प्रार्थना कीजिये । ठीक कह रहा हूं न ?'

मिस मनोरमा के मुंह से निकला 'जी हां ।'

मि० दास बोले, 'यह सब तो आपके ही करने का काम था जो मुझे करना पड़ता है । सिर्फ लड़कियों को पढ़ा देने ही से तो कुछ नहीं हो जाता ? प्रिंसिपल का तो यह भी काम है कि वह कालेज की उन्नति करके दिखलाये । मुझे आपकी उदासीनता पर बड़ा खेद है ।'

मिस मनोरमा के पास कोई उत्तर न था । वह मन ही मन झल्लाकर रह गयी ।

सेक्रेटरी महोदय खड़े होते हुए बोले, 'मैं अब एक काम से जाना चाहता हूं, किन्तु क्या मैं आशा करूं कि आप अब अपनी ड्यूटी को भलीभांति अंजाम देंगी ।'

मनोरमा चली आयी । आज उसका दिमाग ठिकाने पर न था । उसने सोचा, 'इस्तीफा दे दूं क्या ? किन्तु किसी भी कालेज में जाऊंगी तो वहां पुरुषों ही से शासित होना पड़ेगा । क्या परेशानी है ? आज तो बुढ़े ने मुझे फटकारकर रख दिया ।'

वह दूसरे ही दिन फिर अभिराम के यहां पहुँची । उसके आने की सूचना पाकर अभिराम मुस्कराया । नौकर से कहलवा दिया 'बैठिये, अभी आता हूं ।'

ठाठ-बाठ से कपड़े पहिनकर अभिराम बैठक में पहुँचा । उसे देखकर मनोरमा उठकर खड़ी हो गयी और

नमस्ते करती हुई बोली, 'सेक्रेटरी साहब ने आपको धन्यवाद दिया है।'

कुर्सी पर बैठते हुए अभिराम ने कहा, 'बैठिये।'

मनोरमा बैठ गयी। अभिराम ने कहा, 'और कहिये, क्या आज्ञा है?'

मनोरमा जरा गद्गद् होकर बोली, 'एक बार हमारे कालेज का निरीक्षण करें यही प्रार्थना है।'

अभिराम ने ताड़ लिया था कि इस स्त्री में कितना परिवर्तन हो गया है। वह अपनी चाल सफल होती देख कर प्रसन्न था।

बोला 'आप व्यर्थ में क्यों कष्ट करेंगी और लड़कियों के कालेज में मैं जाकर क्या करूंगा। किसी ऊँचे निदान की स्त्री को अपने यहां बुलवाइये।'

मनोरमा बोली, 'स्त्रियों से तो कालेज का कुछ लाभ होता ही नहीं। आप जैसे पुरुषों ही से.....'

बान काटकर मुस्कराता हुआ अभिराम बोला, 'आप पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा इतना अधिक महत्व देती हैं? यह तो आपका स्त्रियों के प्रति अन्याय है देवीजी!'

मनोरमा झेंप-सी गयी। बोली, 'जो काम पुरुषों का है वह स्त्रियों से नहीं हो सकता।'

अभिराम बोला 'यह आप जानें, किन्तु मैं तो समझता हूं कि आप मुझे क्षमा ही कर दें।'

मनोरमा कुछ घबड़ा-सी रही थी, बोली, 'आशा है

आप मेरी प्रार्थना को न ठुकरायेंगे ।’

अभिराम क्षणभर चुप रहकर बोला, ‘अच्छी बात है । मेरे दो एक मित्र भी कालेज को कुछ दान देना चाहते हैं । उन्हें भी साथ लाने की चेष्टा करूंगा ।’

प्रसन्न होकर मनोरमा ने कहा, ‘आपकी बड़ी कृपा होगी ।’

(५)

अभिराम से मिलकर जिस दिन मनोरमा आयी उस दिन उसका चित्त बहुत खराब था । उस दिन रविवार था और कालेज बन्द था । वह दिन भर अपने कमरे में पड़ी रही । वह अभिराम के विषय में सोचती, ‘कितना सुलझा हुआ, बेलौस और स्त्रियों की ओर से उदासीन व्यक्ति है । ईश्वर ने धन भी दिया है और रूप भी । उम्र तो अभी २५ से अधिक न होगी ? कितना सजीला और गठीला है कि बात करता है तो दिल और बात करने को चाहता है । मन होता है उससे बार बार मिलें.....’

शाम का वक्त हो गया था । मनोरमा बाहर आकर अपने बंगले के उपवन में टहलने लगी । आज उसका चित्त बड़ा उद्विग्न था । उसके शरीर में एक सिहरन थी, हृदय में एक टीस थी और उसकी भावनाएँ स्वयं उसे भूले हुए थीं । मलयानिल बहकर उसको जीवन की यथार्थ-वादिता समझने के लिये विवश कर रहा था । वह पास पड़ी हुई एक बेंच पर बैठकर अंगड़ाइयां लेने लगी ।

प्रदर्शनी—

अंधेरा बढ़ रहा था। धीरे से उसकी नौकरानी सुखिया उसके पास आकर खड़ी हो गयी और बोली 'देवीजी अंदर चलिये न ?'

मनोरमा ने उसकी ओर देखा। 'हुश, यह तो स्त्री है।' उसने सुखिया की ओर से आंखें हटा लीं।

सुखिया बोली, 'देवीजी, अंदर चलिये। आपसे कोई मिलने आया है ?'

मनोरमा के शरीर की सिहरन बढ़ गयी। वह बोल उठी सहसा, 'पुरुष है या स्त्री ?'

सुखिया बोली, 'एक मर्द है देवीजी। मैंने तो उनसे बहुत कहा कि देवीजी से मुलाकात न होगी, किन्तु वे बैठ ही गये।'।

मनोरमा जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई कमरे में पहुंची। एक नवयुवक को बैठे पाया।

वह खड़ा होकर बोला, 'मैं सिर्फ सेक्रेटरी साहब का पता जानना चाहता हूं।'।

मनोरमा मुस्कराकर बोली, 'बैठिये-बैठिये न !'

युवक बोला 'मुझे क्षमा करें आप। मुझे अभी सेक्रेटरी साहब से मिलना है। सिर्फ पता बताने की कृपा करें।'।

मनोरमा झल्ला गयी। वह युवक से बात करना चाहती थी; अपना मन बहलाना चाहती थी और चाहती थी कि..।

युवक बोला, 'जल्दी जाना चाहता हूँ।'

मनोरमा झट से बोल उठी, 'आपको बैठना ही पड़ेगा, आपको मुझसे बात करना ही पड़ेगी ..आप..आप..।'

युवक चकित होकर उसका मुँह देखने लगा। मनोरमा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली, 'तुम बहुत अच्छे हो; क्या दो मिनट के लिए न बैठोगे? बैठिये—बैठिये—बैठिये..'

और उसने जबरदस्ती उसे कुर्सी पर बैठा दिया। चकित भाव से युवक ने कहा 'आपको क्या हो गया है? आप.....'

मनोरमा बोली, 'मुझे कुछ नहीं हुआ है; बात यह है कि मैं...मैं...आज एक पुरुष से..आपसे..हां, आपसे..'

उसका सिर चकरा-सा रहा था। उसकी धमनियों में रुधिर की गति तीव्र हो रही थी तथा उसका हृदय गेंद की तरह उछल रहा था।

खड़े होकर युवक ने कहा, 'आपका दिमाग ठीक नहीं है। मैं जा रहा हूँ।'

और युवक चल दिया। मनोरमा ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और पागलों की भांति बोली, 'नहीं जा सकोगे निष्ठुर! मुझे..मुझे तुम्हारी आवश्यकता है....'

और युवक उसे धक्का देकर बाहर निकल गया।

मनोरमा पागलों-सी हो रही थी। वह बाहर दौड़ी, 'ठहरो! ठहरो!! ठहरो!!!'

सामने सुखिया ने आकर कहा, 'क्या बात है देवीजी?'

मनोरमा ने उसके गाल पर भरकर तमाचा दिया और हांफते हुए बोली, 'तेरी जरूरत नहीं है सुखिया—मुझे तेरी जरूरत नहीं, हट ...'

सुखिया भाग खड़ी हुई। मनोरमा दौड़कर बगीचे में पहुँची और पागलों की भांति हांफती हुई उसी बेंच पर जाकर बैठ गयी।

अंधेरा फैल गया था। दूर पर रघुनाथ माली काम कर रहा था। बगीचे में आहट पाकर वह वहां आ पहुँचा।

'कौन लेटा है?' उसने निकट आकर पूछा।

'मैं...मैं...तुम कौन—रघुनाथ?' मनोरमा हांफती हुई बोली।

'कौन, देवीजी! मैं समझा कोई और घुस आया है' कहकर वह जाने लगा।

मनोरमा चिल्लाकर बोली, 'जा रहे हो? इधर आओ, रघुनाथ इधर आओ।'

रघुनाथ डरता हुआ उसके निकट आया। मनोरमा ने पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा और उससे चिपट गयी।

अधेड़ उम्र का रघुनाथ माली घबड़ा गया। अपने को छुड़ाने की चेष्टा करता हुआ बोला 'ना बहूजी, मुझे छोड़ दो—मुझ गरीब को छोड़ दो—ना...ना...ना...'

मनोरमा उससे बुरी तरह चिपटी हुई थी, उन्मादिनी की तरह बोली 'नहीं रघुनाथ...तुम...तुम...'

और रघुनाथ ने उसे धक्का देकर एक ओर ढकेल दिया और भागा । मनोरमा उसके पीछे दौड़ी 'मुझे तुम्हारी जरूरत है रघुनाथ... रघुनाथ... रघुनाथ....'

और सामने खड़े हुए ईंट के ढेर पर ठोकर खाकर वह गिर पड़ी । सिर फट गया और मनोरमा अचेत हो गयी । रघुनाथ उसी रात को सब कुछ छोड़कर गांव भाग खड़ा हुआ ।

जीजाजी की चोरी

(१)

डफरिन अस्पताल के जिस स्पेशल वार्ड में विपिन का जन्म हुआ था उसी में प्रथम बार सुधा की आशा से भेंट हुई थी। दोनों ही थीं समवयस्का तथा अविवाहिता। दो ही चार दिन में घुल मिलकर एक हो गयीं।

सुधा ने धन्यवाद देते हुए कहा था 'आपके श्रम से सब काम सुविधा पूर्वक निपट गया।'।

आशा हंसती हुई बोली 'इसमें धन्यवाद की क्या बात है? यह तो हमारा कर्तव्य ही है।'।

सुधा मुस्कराकर रह गयी।

आशा नर्स थी—हंसमुख और मिलनसार।

मित्रता बढ़ी। दोनों परस्पर मिलतीं, घंटों बात चीत करतीं और आनन्द लेतीं। दोनों का मन मिलता ही चला गया। अस्पताल की मित्रता की इतिश्री अस्पताल ही में नहीं हो गयी। विपिन जब अपनी मां के साथ घर

—जीजाजी की चोरी

आ गया तब दोनों ने एक दूसरे के घर के चक्कर लगाने शुरू कर दिये ।

उनमें अब मौखिक मित्रता न थी , उनका हृदय मिल गया था । बिना एक दूसरे को देखे और बात किये उन्हें चैन ही न पड़ता था ।

आशा कहती 'तुम्हारा विवाह कब होगा सुधा ?'

सुधा कह पड़ती 'मुझे विवाह की जल्दी नहीं है । अपनी कहो ?'

आशा मुस्कराकर कहती 'विवाह फिजूल की चीज है । मुझे दूसरे के बंधन में रहना पसंद नहीं ।'

सुधा कह उठती 'तो फिर मेरे विषय में भी यही बात समझ लो । विवाह करना क्या बहुत जरूरी होता है ?'

आशा चुप रहती । सुधा पूछती 'किसी से विवाह करना चाहती हो क्या ? कोई पसन्द आ गया ?'

आशा बनावटी मुह बनाकर कहती 'धुत् ! मुझे कोई पसन्द नहीं है । अपनी कहो, किसी से प्रेम करने लगी हो क्या ?'

सुधा मुस्कराकर कहती 'प्रेम तो केवल तुमसे करती हूँ आशा ।'

आशा झट कह पड़ती 'तो फिर मुझसे ही विवाह कर लो न ? मैं क्या तुम्हें अच्छी लगती हूँ ?'

सुधा आशा से चिपटकर कहती 'यह तुमने ठीक कहा । मैं तुमसे प्रेम करती हूँ और तुम मुझसे । हम दोनों जीवन

में अलग भी नहीं होना चाहते—आज से तुम 'हसबेंड' और मैं 'वाइफ' ।'

आशा खिलखिलाकर बोली 'मंजूर । अब अगर तुमने किसी और की तरफ आंख उठाकर भी देखा तो लड़ पड़गी ।'

सुधा उसका हाथ जोर से दबाते हुए बोली 'बिल्कुल ठीक । तुम 'हसबेंड' और मैं 'वाइफ' ।'

(२)

उनका प्रेम बढ़ता ही गया । दोनों घंटों एकान्त में बैठी बैठी प्रेम और प्रणय की बातें करतीं । जो लोग उन्हें देखते हैरान हो जाते, उनका मजाक उड़ाते, किन्तु उन दोनों को इसकी चिन्ता न थी ।

और आ गया एक दिन एकाएक आशा के तबादिले का आर्डर । सुधा सुनते ही रो पड़ी; आशा का बुरा हाल था । वह इस्तीफा देने को तैयार हो गयी किन्तु सुधा ने उसे रोक दिया ।

आशा आंसू बहाती हुई बोली 'अब मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकूगी सुधा ?'

सुधा का हृदय भरा हुआ था, वह बोली 'भगवान भी किसी का आनंद नहीं देख सकते ।'

आशा का जी बैठ-सा जा रहा था । वह बोली 'तो फिर मुझे इस्तीफा दे देने दो सुधा ।'

सुधा बोली 'मैं तुम्हें ऐसा न करने दूंगी ।'

—जीजाजी की चोरी

क्षणभर चुप रहकर आशा बोली 'घबड़ाओ मत सुधा । मैं तुम्हें प्रति सप्ताह पत्र लिखूंगी तथा छुट्टी मिलते ही फौरन आऊंगी ।'

सुधा को किसी प्रकार धैर्य न होता था । वह बच्चों की तरह आशा के गले में हाथ डालकर लिपट गयी और बोली 'मत जाओ मेरी आशा मुझे छोड़कर ।'

आशा के फिर आंसू आ गये ।

जिस दिन आशा प्रयाग चली गयी उस दिन सुधा ने सारे दिन पानी भी उठकर न पिया । चुपचाप पलंग पर पड़ी रोती रही । सबने समझाया 'बेवकूफ हुई है ? चल उठ, खा पी !'

किन्तु सुधा ने किसी की एक न सुनी । उसने भोजन छुआ भी नहीं ।

कोई उसकी हार्दिक पीड़ा क्या समझ सकता था ?

तीसरे ही दिन आशा का पत्र आया । सुधा उसे पढ़कर प्रसन्न हो गयी । आशा ने लिखा था:—

आलिगन,

मैं कल यहां अच्छी तरह पहुंच गया । रेल-यात्रा में अधिक थक जाने पर भी रात भर सो न सका । रात भर तुम्हारी मंजुल मूर्ति नेत्रों के आगे नाचती रही । सवेरे अस्पताल गया किन्तु मन न लगा । मैं नहीं जानता था कि बढ़कर हमारा और तुम्हारा प्रेम उस सीमा पर पहुँच जायगा जहां से लौटना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है ।

प्यारी सुधा, और अधिक क्या लिखूँ ? काश यदि तुम पास होतीं, और हम तुम सदा की भांति एक दूसरे के गलों में बाहें डालकर.....

अब कुछ लिखा नहीं जाता । शेष फिर—

तुम्हारा

आ०

पत्र पढ़कर सुधा खिल उठी । उसी समय उसने उत्तर लिखा:—

मेरे सर्वस्व

अपना हाल क्या लिखूँ ? तुम्हारी स्मृति की नींव पर ही यह जीवन का ढांचा सधा हुआ है । सच जानना, ये तीन दिन और तीन रातें रोते ही व्यतीत हुई हैं । काश, पंख होते और मैं उड़कर तुम्हारे पास पहुँच सकती ! मैं तो सदैव यही सोचती रहती हूँ कि हमारा यह प्रेम किस प्रकार स्थायित्व का रूप ले सकता है । यदि जीवन से तुम्हें निकाल दिया जाय तो यह शरीर फिर क्या सुधा का शरीर रह जायगा ।

और तुम निष्ठुर ! आज इतनी दूर चले गये ? जब तक जागती रहती हूँ उस समय तक निरंतर एक टीस-सी हृदय में उठती रहती है और जब आंख मूंद लेती हूँ तब तुम्हारी वह मस्मित एवं चंचल मूर्ति हृदय के सप्रकाश नाच उठती है ।

कब आओगे मेरे प्रेम ? यदि हो सके तो दो चार दिन

—जीजाजी की चोरी

की छुट्टी लेकर इस उत्तप्त हृदय को सिंचित करजाओ । सच कहती हूँ यदि तुमने उदासीनता दिखलायी तो इस शरीर रूपी पिंजड़े को जर्जर पाकर प्राण-पंछी उड़ ही जायगा एक दिन ।

तुम्हारी

सु०

आशा ने उत्तर में लिखा :-

प्रियतमे,

तुम्हारा प्रेम-सिक्त पत्र मिला । सच मानना मानों तुम स्वयं सामने बैठी हुई उपालम्भों की तालिका अपने हाथों मुझे दे रही हो । तुम्हारी तप्त निश्वासें मानों उतनी दूर से स्पष्ट सुनायी दे रही हैं । मैं व्यथित हूँ, विकल हूँ, विवश हूँ और वेदनाओं से सिक्त और आशाओं से रिक्त यह शरीर निष्प्राण-सा हो गया है ।

किन्तु क्या यह बंधन टूट सकेगा सुधे ? याद है जिस दिन हम तुम सामाजिक टिप्पणियों के आघातों को सहकर भी एक बने रहे थे ? सच जानना सुधा, एक एक क्षण जीवन का तुम्हारी ही स्मृति में व्यतीत होता है । छुट्टी मिलने की आशा कम है, फिर भी इसी प्रयत्न में हूँ । तुम घबड़ाना नहीं सुधा, तुम्हारी क्षणिक प्रसन्नता के लिए मैं अपना स्थायित्व भी भेंट चढ़ा सकता हूँ ।

तुम्हें कितने ही प्यार !

तुम्हारा

आ०

पत्र-व्यवहार चलता रहा ; आशा दो बार आकर सुधा से मिल भी गयी। आशा इसी प्रकार सदैव पति की भाँति पत्र लिखती और सुधा उसकी पत्नी की भाँति उत्तर देती। दोनों को इससे बड़ा धैर्य मिलता।

सुधा के जीजाजी अविनाशचंद्र आये हुए थे। सुधा उनका बड़ा सम्मान और सत्कार करती थी। अविनाशचंद्र थे साहित्यकार तथा हंसमुख।

बातों ही बातों में अविनाशचंद्र पूछ बैठे 'और तुम्हारी आशाजी कहाँ चली गयीं।'

सुधा बोली 'उनका तो ट्रान्सफर हो गया जीजाजी प्रयाग के लिए।'

हंसकर अविनाशचंद्र बोले 'तुम्हारी तो उनसे बहुत घुटती थी सुधा। अब तुम्हारा जी कैसे लगता होगा?'

सुधा बोली 'क्या करूँ जीजाजी, आशा मुझे बहुत अच्छी लगती है। उनके जाने पर बड़ा सूना हो गया। मुझसे मिलने के लिए तो बेचारी दो बार यहाँ आयी। आपको पूछती थी।'

मुस्कराकर अविनाश बोले 'अहो भाग्य! मेरी भी राम राम लिख देना आशाजी को। पत्र तो आते ही होंगे?'

कुछ संकोच के साथ सुधा धीरे से बोली 'हां, भेजती तो हूँ।'

—जीजाजी की चोरी

अविनाश को इस प्रकार के पत्रों को पढ़ने का बड़ा चाव था। बोले 'जरा हमको भी दिखलाओ उनके पत्र सुधा। देखें कैसा लिखती है?'

सुधा चुप रह गयी। ऐसे तो सुधा जीजाजी को स्वयं वे पत्र दिखला देती, किन्तु जिस भांति वे लिखे गये थे उसे याद करके उसे बड़ी शर्म मालूम पड़ती थी। वह जानते थे कि जीजाजी उसकी हंसी उड़ायेंगे। और कहीं आशा को मालूम हो गया तो—

उसे चुप देखकर जीजाजी ने कहा 'क्या दिखलाने का इरादा नहीं है सुधा?'

सुधा जरा मुस्कराकर बोली 'यों ही साधारण से पत्र हैं। क्या करियेगा देखकर?'

जीजाजी पीछे पड़ गये। सुधा मुसीबत में पड़कर बोली 'दिखा दूंगी आपको ढूँढ़कर। कहीं रख दिये हैं।'

जीजाजी तीन दिन तक रहे, किन्तु सुधा बराबर उन्हें ढालती रही। उसे पत्र दिखलाने में बड़ी लज्जा-सी आ रही थी। यदि केवल प्रेम से भरे हुए पत्र होते तो सुधा जीजाजी को अवश्य दिखा देती, किन्तु जिस प्रकार वे लिखे गये थे उसे सोचकर सुधा शर्म से गड़ी-सी जा रही थी।

अंत में जीजाजी ताड़ गये कि सुधा पत्र दिखलाना नहीं चाहती। जिस वस्तु से हमको दूर रखने की चेष्टा की जाती है प्रायः हम उसके निकट पहुंचने के लिए और भी उत्सुक हो उठते हैं। जीजाजी को भी इस बात का

कुतूहल उत्पन्न हुआ कि पत्र अवश्य देखना चाहिए ।

और मौका लग गया । दूसरे दिन सुधा अपनी एक सहेली से मिलने गयी थी । अच्छा अवसर ताड़कर उन्होंने उसका सन्दूक खोल डाला । ऊपर के पाकेट ही में पत्र लगे हुए थे । उन्होंने पत्रों को निकालकर जल्दी जल्दी पढ़ना शुरू कर दिया । पत्र संख्या में ८-१० थे । उन्होंने झटपट उन्हें पढ़ डाला और मुस्कराकर उन्हें यथास्थान रख दिया । अब उन्हें मालूम हुआ कि सुधा पत्रों को क्यों छिपा रही थी । उन्हें बार बार हंसी आ रही थी ।

उसी दिन शाम की गाड़ी से अविनाश बाबू लौट गये । सुधा ने शांति की सांस ली । उसे क्या मालूम कि उसके पत्रों का भेद बड़ी दूर चला गया ।

(४)

उसके बाद अविनाशचंद्र सुधा के विवाह पर आये । आशा भी आयी हुई थी ।

उन्होंने हंसते हुए आशा से कहा 'आपकी जगह यदि में होता तो सुधा को इस प्रकार कभी न जाने देता ।'

आशा बोल उठी 'किन्तु मुझे रोकने का अधिकार ही क्या है ?'

अविनाशचंद्र मुस्कराकर बोले 'अधिकार तो बहुत कुछ था आपको, किन्तु आपने उसका प्रयोग नहीं किया ।'

आशा आश्चर्य के साथ उनका मुंह देखती हुई बोली 'मैं समझी नहीं आपकी बात ।'

—जीजाजी की चोरी

अविनाशचंद्र बोले 'मैं सच ही कह रहा हूं आशाजी । जिससे प्रेम करो उस पर अपना अधिकार हो ही जाता है फिर यह कैसे सहन किया जा सकता है कि कोई दूसरा बीच में आ टपके । और फिर आपका तो सोलह आने अधिकार ठहरा ।'

कहकर हंसते हुए जीजाजी दूसरी तरफ चले गये । आशा पिटे से मुंह से खड़ी रह गयी ।

सुधा के पति रमानाथ जरा हंसमुख और मिलनसार व्यक्ति थे । सुधा भी उन्हें पाकर सब कुछ भूल गयी । अब आशा से भी उस प्रकार का पत्र-व्यवहार न था ; जो भी था वह साधारण ढंग का । चलते समय उसने आशा से अपने पत्र ले लिये थे ।

एक दिन सुधा किसी सहेली से मिलने चली गयी और किसी आवश्यक चीज की तलाश करते करते दुर्भाग्यवश वे पत्र रमानाथ के हाथ पड़ गये ।

दो एक पत्र पढ़ते ही रमानाथ का सिर चकरा गया । पत्रों को पढ़कर उन्होंने एक गहरी सांस ली और उन्हें यथास्थान रख दिया ।

उस दिन से सुधा का संसार ही बदल गया । बिना कुछ कारण बताये ही रमानाथ उसकी ओर से उदासीन रहने लगे । सुधा भी इस व्यवहार से चकित और दुखी थी । जितना ही वह कारण जानने की चेष्टा करती, उतना ही रमानाथ उससे खिंचते जाते ।

‘मक्कार, बेहया—’ न जाने क्या क्या वे सोचे जाते सुधा के विषय में।

एक दिन सुधा दुखी होकर पूछ बैठी ‘आखिर, मुझसे क्या अपराध हुआ है?’

रमानाथ सूखी हंसी हंसकर बोले ‘मैं कब कहता हूँ अपराध हुआ है? मनुष्य को स्वयं दर्पण में अपना मुंह देखना चाहिए।’

सुधा रोकर बोली ‘तो क्या किसी को बिना अपराध ही दंडित करना उचित है?’

रमानाथ बोल उठे ‘यह अपने मन से पूछो। वही निर्णय दे देगा।’

सुधा रोकर रह गयी। उसकी समझ में पति की पहेलियां न आयीं।

धीरे धीरे सुधा सूखकर कांटा हो गयी। रमानाथ का भी स्वास्थ्य गिर रहा था। रात भर गहरी गहरी सांसे लिया करते। सुधा उन्हें सुनती और रोकर रात व्यतीत कर देती।

अंत को ऊबकर वह कुछ दिनों के लिए पिता के घर चली गयी। रमानाथ पर से मानों बोझ-सा हट गया।

(४)

रमानाथ कुछ दिनों बाद कार्यवश प्रयाग जा रहे थे। लखनऊ के स्टेशन पर एकाएक उनकी भेंट हो गयी अविनाश बाबू से।

—जीजाजी की चोरी

अविनाश ने पूछा 'किधर चले रमा बाबू ?'

रमानाथ ने धीरे से कहा 'जरा प्रयाग जा रहा हूँ ।'

अविनाश आकर बैठ गये । कुलियों ने उनका सामान लाकर रख दिया ।

आराम से बैठ जाने के बाद अविनाश ने कहा 'प्रयाग कैसे चले ?'

रमानाथ क्षणभर रुककर बोले 'यों ही, जरा एक काम से जा रहा हूँ ।'

अविनाश मुस्कराकर बोले 'हमारी सुधाजी अच्छी तरह से हैं न ?'

रमानाथ की चोट ताजी हो-गयी । धीरे से बोले 'हां, सब ठीक है ।'

अविनाश ने देखा कि रमा बाबू कुछ उड़े-से हुए हैं, वे चुप रहे ।

थोड़ी देर बाद वे बोले 'ठहरियेगा कहां ?'

रमानाथ बोले 'कहीं ठहर जाऊंगा । अभी कुछ ठीक नहीं है ।'

अविनाश ने देखा कि रमानाथ के पास कोई विशेष सामान भी नहीं है । सहसा बोल उठे 'हमारी सुधाजी बड़ी अच्छी हैं । उन्हें साथ क्यों नहीं लाये ।'

रमानाथ को एकाएक याद आया कि 'पत्रों वाला 'आ०' कहीं अविनाश ही तो नहीं है ।' वे चुप रहे ।

अविनाश बोले 'सुधा की सहेली आशा देवी आज कल

प्रयाग ही में रहती है। इस बार उन्हीं के यहां ठहरेगा तुम्हें देखकर उन्हें प्रसन्नता भी होगी और जलन भी।’

कहकर अविनाश हंस दिये।

रमानाथ चुप थे। अविनाश कहता गया ‘दोनों में अटूट मित्रता है। दोनों एक दूसरे पर जान देती हैं।’

रमानाथ चुप थे।

हंसकर अविनाश ने कहा ‘दोनों एक दूसरे को ‘हसबैंड’ और ‘वाइफ’ समझते हैं। आशा पति है और सुधा ‘पत्नी।’

रमानाथ के कान खड़े हुए। वे बोले ‘किन्तु मैंने कभी आशा को नहीं देखा।’

हंसकर अविनाश बोले ‘आशा बड़ी हंसमुख है। दोनों परस्पर इतने सुन्दर पत्र लिखा करती थीं कि पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाय।’

रमानाथ की व्याकुलता बढ़ रही थी। वे बोल उठे ‘आपने पढ़े हैं वे पत्र?’

मुस्कराकर अविनाश बोले ‘सुधा तो उन्हें चुराकर संदूक में रखती थी किन्तु एक दिन मैंने वे पत्र चुराकर पढ़ ही लिये। मेरी यह चोरी सुधा को आज तक नहीं मालूम हुई।’

रमानाथ की व्याकुलता चरम सीमा पर थी। वे बोले ‘क्या लिखा था उनमें?’

अविनाश ने कहा ‘सुधा से मांगकर पढ़ लेना न? प्रेम से सराबोर वे इतने सुन्दर पत्र हैं जिनका संकलन

प्रकाशित करके कोई भी प्रकाशक अच्छा-खासा धन पैदा कर सकता है। कदाचित् ही सुधा आपको वे पत्र दिखा सके।’

‘क्यों’ रमानाथ के मुंह में निकल गया।

मुस्कराकर अविनाश ने कहा ‘यह बड़ी मजेदार कहानी है। आशा अपने को सुधा का पति समझती है और तभी तो मैंने कहा कि उसे तुम्हें देखकर प्रसन्नता भी होगी और जलन भी। तुमने तो दाल भात में मूसलचंद की तरह घुसकर आशा की औरत को ही हड़प लिया।’

कहकर अविनाशचंद हंसने लगे।

रमानाथ अब सब कुछ समझ गये थे। आशा का ‘आ०’ भी उनकी समझ में आ गया था। अपनी भूल और जल्दबाजी से जो अत्याचार सुधा पर हो गया था उस पर उन्हें खेद था। वे मौन बैठ रहे।



रमानाथ ने कहा ‘मुझे क्षमा करो सुधा, मैंने व्यर्थ ही मैं तुम पर इतना बड़ा अत्याचार कर डाला।’

सुधा बोली ‘किन्तु आपको यह सब मालूम कैसे हुआ? क्या आशा ने बतलाया।’

रमानाथ बोले ‘नहीं। अविनाश बाबू से सभी कुछ मालूम हुआ अचानक।’

आश्चर्य के साथ सुधा बोली ‘किन्तु उन्हें तो कुछ मालूम न था।’

रमानाथ मुस्कराकर बोले 'उन्होंने तुम्हारे विवाह के पहिले ही एक दिन संदूक से चुराकर उन पत्रों को पढ़ लिया था।'

सुधा हंसकर चुप हो रही। थोड़ी देर बाद बोली 'जीजाजी चोरी भी करते हैं यह मुझे आज मालूम हुआ।'

मुस्कराकर रमानाथ ने कहा 'यह चोरी भी तो हम लोगों के लिए वरदान हो गयी। जीजाजी को इसके लिए धन्यवाद देना चाहिए।'

कला का मूल्य

बांस की टूटी चारपाई पर गंदी-सी एक दरी बिछी हुई थी और उसपर लेटा हुआ था वह कलाकार जिसकी कहानियों ने देश में धूम मचा रखी थी । सामने एक पुरानी-सी मेज पर , जिसकी पालिश की दशा कलाकार की दशा से भी ज्यादा गिरी हुई थी, चार पांच शीशियां रखी हुई थीं । कमरा नाना प्रकार की गंदगियों का अड्डा-सा बना हुआ था—सामने बिना किवाड़ों की एक आलमारी थी जिसमें मासिक पत्रों की कुछ पुरानी फाइलें, फटी हुई जिल्दों वाली कुछ पुस्तकें, गर्द से ढँका हुआ एक पुराना-सा कलमदान तथा चश्मे का टूटा-सा केस बेतरतीब रखा हुआ था ।

कलाकार ने कराहकर कहा 'नीरजा !'

गंदी किन्तु घर की धुली हुई धोती लपेटे नीरजा ने निकट आकर कहा 'क्या कहते हो ?'

कलाकार आंख बंद किये हुए बोला 'ओफ्, बड़ा कष्ट है ।'

प्रदर्शनी—

नीरजा क्षणभर तक चुप खड़ी रही, फिर एक हलकी-सी सांस लेकर बोली 'डाक्टर साहब आते होंगे। दर्द हो तो सेंक दूँ ?'

कलाकार चुप रहा। वह आज दस दिन से निमोनियां से जकड़ा पड़ा हुआ है। नीरजा के पास जो कुछ था—साधारण-सी हैसियत—वह उसने पति के इलाज में समाप्त कर दिया था। अब न इलाज के लिए पैसे थे और न बच्चों के लिए भोजन। कल से डाक्टर ने भी आना बन्द कर दिया था—जब फीस ही नहीं मिलती तो वह करे भी क्या आकर? एक लम्बा-सा मूल्यवान नुसखा लिखकर परसों वह दे गया था—फिर न तो डाक्टर ही आया और न उस नुसखे की दवा ही नीरजा मंगा सकी। बच्चे भी कल से भूखे ही थे, और नीरजा तो आज.....।

कलाकार बोल उठा 'सुनो, नीरजा !'

धीरे से नीरजा ने कहा 'क्या ?'

जरा दम लेकर कलाकार ने कहा 'मेहता कम्पनी तक चली जाओ, तुम। मेरी कुछ कहानियां उनके पास पड़ी हुई हैं। कदाचित वे कुछ दे सकें ?'

नीरजा चुप रही। वह कई बार मेहताजी के पास अपने बच्चों को भेज चुकी थी, स्वयं हो आयी थी, किन्तु प्रकाशक की मनुष्यता को जाग्रत करने में वह कदाचित् असफल ही रही थी।

कलाकार अपने घर की दशा जानता था। बोला

‘सुना नहीं नीरजा तुमने ?’

धीरे से नीरजा बोली ‘सब प्रबन्ध हो जायगा ।’



बच्चे भूख से छटपटा रहे थे और स्वयं कलाकार मृत्यु के निकट चला जा रहा था । नीरजा असहाय थी । वह जान देकर भी पति और बच्चों को बचाना चाहती थी किन्तु उसकी जान का भी कोई ग्राहक नज़र न आता था ।

बच्चे दम तोड़ते फटी चटाई पर पड़े हुए थे । कलाकार का जीवन-प्रदीप ‘अब-तब’ हो रहा था । नीरजा भूख और शोक से विह्वल, आर्तनाद कर उठी ‘हे भगवान् !’ और उसी समय द्वार पर एक मोटर रुकी । एक सुन्दर, आधुनिक वेश-भूषा से अलंकृत नवयुवती ने कलाकार के कमरे में घुसते हुए कहा ‘क्या मैं कलाकार प्रकाश वर्मा के दर्शन कर सकती हूँ ?’

नीरजा आश्चर्य के साथ उठकर खड़ी हो गयी । कलाकार प्रकाश ने आंखें फाड़कर नवयुवती की ओर देखा और टूटे-फूटे शब्दों में कहा ‘मैं—मैं—प्रकाश—वर्मा’

नवयुवती के मुंह से साश्चर्य निकला ‘हैं, क्या यह सच है’

(२)

हाल खचाखच दर्शकों से भरा हुआ था । इन्टर नेशनल सिने-पिक्चर्स का नया चित्र ‘प्रभात’ आज तीन महीने से दिल्ली के मैजिस्टिक-टैकीज में चल रहा था । आज

प्रदर्शनी—

उसका अन्तिम प्रदर्शन था। दर्शकों तथा सिनेमा-गृह-अध्यक्ष के विशेष अनुरोध से 'प्रभात' की मुख्य अभिनेत्री शान्ताबाई दिल्ली आयी हुई थीं। आज वे खेल प्रारम्भ होने के पूर्व ही दर्शकों के सामने आयेंगी तथा 'प्रभात' के विषय में कुछ देर बोलेंगी।

शान्ताबाई के स्टेज पर आते ही तालियां पिटने लगीं। जिसे अभी तक पर्दे पर देखते आये हैं उसे सामने साक्षात् खड़ा देखकर दर्शक प्रसन्न क्यों न होते? लोग शान्ताबाई के अभिनय पर मुग्ध थे।

दर्शकों को शान्त करते हुए शान्ताबाई ने अपने वीणा विनिन्दित मधुर स्वर में कहना प्रारम्भ किया:-

'मित्रो,

मैं आपकी अत्यन्त ही कृतज्ञ हूं। जो सम्मान आज आपने दिया है उसे पाकर गद्गद् हूं। वास्तव में इस चित्र ने देश में एक हलचल-सी मचा दी है। इस चित्र के प्रदर्शन ने सिनेमा घरों का रिकार्ड तोड़ दिया है।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस चित्र द्वारा बीस लाख रुपया हमारी फिल्म कम्पनी ने अर्जित किया है। पचास हजार रुपया निर्माता को तथा २५ हजार रुपये मुझे मिले हैं। किन्तु आप जानते हैं कि इस सारी सफलता की तह में क्या है? आप कहेंगे निर्माता का अटूट श्रम; मैं कहूंगी 'नहीं'; आप कहेंगे मेरा अभिनय, मैं कहूंगी 'नहीं'। इस चित्र की सफलता का सारा श्रेय कथानक

और कथाकार को है। इस चित्र का प्राण ही इसका प्लॉट है। इन सारी सफलताओं का श्रेय उस कथाकार को है जिसने हमको अपनी 'स्टोरी' दी है। आप जानते हैं वे कथाकार कौन हैं? वे हैं श्री प्रकाश वर्मा।'

(करतल-ध्वनि)

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने आज ही इस फिल्म कम्पनी से अपना त्याग-पत्र दे दिया है। आप पूछेंगे 'क्यों?' मैं आपसे पूछती हूँ कि 'आपको मालूम है कि इस कथानक के लिए कथाकार को कम्पनी ने क्या दिया है? केवल पचास रुपये?'

चारों ओर से आवाजें आयीं 'क्या दिया है? क्या दिया है? ज़रा फिर से कहिये!'

शान्ताबाई ने स्फुट-स्वर से चिल्लाकर कहा 'केवल—पचास रुपये।'

आवाजें 'शेम-शेम'

शान्ता ने कहा 'मैंने कम्पनी के डायरेक्टर्स तथा निर्माता से इस विषय में अनुरोध किया था कि वे कथाकार को समुचित रूप से पुरस्कृत करें, किन्तु उन्होंने इस बात पर विचार करने में अपनी बराबर उदासीनता दिखलाई। अंत में मैंने उक्त कम्पनी से त्याग-पत्र दे दिया है। क्या आप उस कलाकार के प्रति इतने बड़े अन्याय को सहन कर सकते हैं जिसने आपको इतनी सुन्दर वस्तु दी है?'

आवाजें 'नहीं, नहीं।'

प्रदर्शनी—

शान्ताबाई क्षणभर चुप रहकर बोली 'आपका वह कलाकार—प्रकाश वर्मा—इसी दिल्ली नगरी में रहता है। मैं आपके सामने आज अपना नृत्य दिखलाने के लिए दिल्ली में नहीं आयी हूँ, और न आपको अपनी सूरत दिखाकर प्रसन्न ही करने के लिए। मैं तो यहां उस कलाकार का दर्शन करने आयी हूँ—अपनी श्रद्धा भेंट करने के लिए आयी हूँ; साथ ही साथ फिल्म कम्पनियों के उन पूंजीपतियों का भंडा-फोड़ करने आयी हूँ जो कौड़ियों के मोल कलाकारों को खरीदकर आपसे लाखों रुपये पैदा करके हड़प जाते हैं। मैं आजही कलाकार प्रकाश वर्मा से मिलूंगी तथा उनके चरणों पर अपनी श्रद्धा अर्पित करने के साथ ही साथ उन पच्चीस हजार रुपयों की थैली भी रख दूंगी जो मुझे अभिनय के पारिश्रमिकस्वरूप कम्पनी ने दिये हैं।'

आवाजें 'आप धन्य हैं।'

करतलध्वनि

(३)

कलाकार का दम टूट रहा था। शान्ताबाई ने सजल नेत्रों से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा 'माई !'

कलाकार ने धीरे से आंख खोलकर शान्ताबाई की ओर देखा। वह उनसे अपने कथानक की सफलता का वह सब हाल सुन चुका था जो उसने नीरजा को सुनाया था। उसके चेहरे पर सन्तोष था।

नीरजा ने रोते हुए कहा 'दवा का समुचित प्रबन्ध न

होने के कारण ही आज इनकी यह दशा हो गयी है । आज तीन दिन से बच्चे.....’

और उसका गला भर आया । शान्ता उसे सांत्वना देती हुई बोली ‘घबड़ाओ मत बहिन । अभी ड्राइवर डाक्टर को लेकर आता होगा ।’

शान्ता जानती थी कि कलाकार की अन्तिम घड़ियां उपस्थित हैं किन्तु नीरजा के संतोष के लिए उसने ड्राइवर को भेजकर नगर के सबसे प्रसिद्ध डाक्टर को बुला भेजा था ।

डाक्टर ने आकर मरीज के शरीर और प्राण की भली भांति परीक्षा की ।

शान्ता ने पूछा ‘क्या आप इन्हें बचा सकेंगे ?’

डाक्टर ने एक लम्बी सांस खींचकर कहा ‘टू लेट’ नीरजा डाक्टर का मुंह देखने लगी ।

डाक्टर ने कहा ‘आश्चर्य है कि मरीज को शक्ति संचित रखने के लिए अब तक न तो दूध ही दिया गया और न फलों का रस ही । मेरे ख्याल से तो (नीरजा की ओर देखकर) कदाचित् तीन दिन से किसी प्रकार की औषधि भी नहीं दी गयी है ।

नीरजा नीचे सिर किये हुए थी ।

सहसा कलाकार ने नेत्र खोलकर पास खड़ी हुई नीरजा और बच्चों की ओर देखा । उसके बुझते हुए नेत्रों में जल-सा दिखलाई पड़ा । हाय, ये सब अनाथ

हो गये !

उचित समय देखकर शान्ता ने कलाकार के कान के पास मुंह ले जाकर कहा 'आप चिन्ता न करें। उन्हें अब किसी प्रकार का कष्ट न होगा।'

और उसने अपने बेग से नोटों के पुलिन्दे निकालकर उसके पास पलंग पर रख दिये।

कलाकार ने आंखें फाड़कर पहिले नोटों की ओर देखा और फिर शान्ता के मुंह की ओर।

❀

❀

❀

और उसी दिन आध घंटे बाद ही—केवल पैंतीस वर्ष की अवस्था ही में देश के एक सुप्रसिद्ध कलाकार ने भोजन, दवा और उपचार के अभाव में अपना दम तोड़ दिया।

संध्या को जिस समय यमुना-तट पर कलाकार की हड्डियों की चिता जल रही थी उसी समय उसी स्थान से कुछ फर्लांग दूर मैजिस्टिक-सिनेमा में उसका कथानक सैकड़ों दर्शकों का मनोरंजन करके सिनेमा-संसार के पूंजी-पतियों की झोली भर रहा था। कलाकार की 'संध्या' निर्जन थी किन्तु उसका 'प्रभात' जन-समूह के अट्टहास से गूँज रहा था।

भलेमानुसों की बस्ती

(१)

लखनऊ की गन्नेवाली गली की मोड़ से बीस-पचास गज हटकर जो चौराहा है उसी के पास हम लोगों को एक छोटा-सा मकान किराये पर मिला था। यद्यपि मोहल्ले में कुछ अधिक चहल-पहल और रौनक न थी फिर भी चौराहे के पास वाले ताड़ीखाने की वजह से रात में बारह एक बजे तक काफी हल्ला-गुल्ला और चहल-पहल मची रहती थी। सड़क पर दोनों ओर बिना तरतीब के पंक्ति लगावे नशेबाजों के समूह सामने ताड़ी के बड़े बड़े और लम्बे कुल्हड़ रखे हुए दिखलाई पड़ते। सामने पत्तों और दोनों में बेसन के सेव, तेल के पकौड़ें और अन्य नमकीन-चटपटे खाद्य पदार्थ रखे रहते। पीने वालों में प्रायः नीची जाति के ही लोग रहते, किन्तु यदा कदा सहमे, डरे तथा छिपकर ताड़ी खरीदने के लिए आये हुए कुछ मध्यम वर्ग के लोगों के भी दर्शन हो जाते। दिन दहाड़े नैतिकता की हत्या होती, समाज

की जड़ पर खुल्लम-खुल्ला कुल्हाड़े चलते तथा खून पसीना बहाकर पैदा की हुई मजदूरों और श्रमजीवियों की कमाई लुटती देश की सरकार की छत्र-छाया के नीचे, किन्तु इससे किसी को क्या ? राष्ट्र-निर्माण के लिए व्यय किये जाने वाले धन से ताड़ीखाना फला-फूला रखा जाना यही तो सभ्य सरकार की कर्तव्य परायणता है ।

ताड़ीखाना की चहल-पहल प्रायः रात्रि के एक बजे तक रहती, किन्तु सवेरे ऐसा मालूम पड़ने लगता था कि जैसे कोई जगमगाती हुई विशाल अट्टालिका अभी कुछ घंटों पहिले जलकर राख हुई हो । ऐसा मालूम पड़ता था मानो सैकड़ों दीन-हीन मजदूरों, कुलियों तथा श्रमजीवियों का रुधिर पीकर ताड़ीखाना सुख की नींद ले रहा हो । दिनरात खून चूसने वाला यह ताड़ीखाना कुछ ही घंटों के लिए शान्त होता था और फिर चालू हो जाता था । इस खुले भ्रष्टाचार के लिए राज्य की ओर से भी कोई नियंत्रण न था । इधर ताड़ीखाने में मेला लगता और उधर ताड़ीखाने के भक्तों के घरों में बच्चे भूख से बिलबिलाते, कर्जदार उनकी बीबियों की अस्मत पर डाका डालते, जवान बेटियां खून के आंसू रोतीं किन्तु इन बातों से कभी ताड़ीखाने की रौनक कम न हुई, कभी सरकारी नियमों में कोई परिवर्तन न हुआ और न भक्तों ने अपनी उपासना ही छोड़ी।

में जब लगभग ९ बजे अमीनाबाद-पार्क से घूमकर लौटता तो चौराहे पर इन ताड़ी-भक्तों का जलसा अपने नज़

—भलेमानुसों की बस्ती

रूप में देखने को मिल जाता । कोई खाता, कोई पीता, कोई नशे में अबाही-तबाही बकता, कोई किसी से लड़ रहा होता तथा कोई नशे में मस्त कब्बाली और ठुमरी गाता होता । यदा कदा दो तीन स्त्रियां भी उस समूह में दिखलाई पड़ जातीं । उनके पीछे पियक्कड़ों का जमाव लगा होता तथा वे स्त्रियां (या सम्भवतः वेश्याएँ हों) हंसती-मुस्कराती और थिरकती हुई, नशे में मस्त कभी इसके पास खड़ी होतीं और कभी उसके पास । कभी मस्त कटाक्षों से गुनगुनाती हुई पियक्कड़ों को अपने गले-सड़े और भट्टे यौवन की ओर आकर्षित करने का लज्जाजनक व्यापार करतीं । एकाध बार मैंने इन बेशर्म और घृणित स्त्रियों के लिए पियक्कड़ों के दो दलों को परस्पर उलझते और लड़ते भी देखा ।

(२)

मकान के सामने एक डिपुटी साहब रहते थे—नाम था उनका मि० पीटर । देखने में निहायत भले, मिलनसार सभ्य और सुसंस्कृत । थोड़े ही दिनों में मेरा उनसे परिचय हो गया । उनकी स्त्री मिसेज पीटर और मेरी धर्मपत्नी में भी काफी मेल जोल हो गया ।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा 'यह ताड़ीखाना तो इस मोहल्ले का अभिशाप है । आप लोग किस तरह रहते हैं यहां ?'

हंसकर मिस्टर पीटर ने कहा 'आप दो ही दिन में घबड़ा गये ? यहां तो यह देखते देखते एक जमाना

हो गया ।’

‘तो फिर इसे हटवाइये न यहां से ?’ मैंने कहा ।

मि० पीटर जरा गम्भीर होकर बोले ‘कोई सुनता है ? इस ताड़ीखाने की वजह से हर वक्त यहां गुंडे बदमाशों का जमाव रहता है । मारपीट, शोरोगुल, बदमाशियां और गुंडे-बाजी का तो यह मोहल्ला अड्डा बन गया है । कमबस्त इस कदर पीते हैं कि होश नहीं रहता । शरीफ आदमियों की मुश्किल है, इन कमीनों और रज्जीलों का क्या बिगड़ता है ? दिन भर जो कमाते हैं, रात को ताड़ीखाने की नज़र कर देते हैं । औरतें और बच्चे घर में भूखों मरते हैं । क्या तमाशा है ?’

मैंने कहा ‘और सरकार भी तो कुछ नहीं करती ।’

मि० पीटर बोले ‘सरकार को क्या पड़ी है ? उसकी तो आमदनी का जरिया है । सुना है शराब की आमदनी से सरकार के शिक्षा-विभाग का खर्च चलता है ।’

मैंने कहा ‘अगर आप कोशिश करें इस ताड़ीखाने को यहां से हटवाने में तो मुहल्ले में आपका नाम हो जाय ।’

मि० पीटर कुछ देर चुप रहकर बोले, ‘हां-हां, आप कोशिश कीजिये, मैं आपकी मदद करूंगा ।’



एकाएक किसी स्त्री के रोने-चिल्लाने की आवाज़ से मेरी नींद खुल गयी । मैंने धर्मपत्नी को जगाकर कहा ‘कोई औरत रो रही है ।’

मकान के नीचे चारपाई बिछाये करीम घोबी लेटा हुआ था। मैंने ऊपर से ही कहा 'क्यों मियां करीम, यह रोने-चिल्लाने की आवाज़ कहां से आ रही है ? ऐसा मालूम पड़ रहा है जैसे किसी औरत को पीटा जा रहा हो।'।

करीम हाथ में पंखा लिये हुए उठकर बैठ गया और बोला 'यही सामने वाले हैं बाबूजी। शराब के नशे में अपनी घरवाली को पीटा करते हैं।'।

धर्मपत्नीजी नींद में थीं, बोलीं 'होगा कोई, अपने आप चुप हो जायगा।'।

और वे फिर सो गयी। मैं उठकर छज्जे पर आया। आवाज़ बहुत नज़दीक मालूम पड़ रही थी। थोड़ी दूर चौराहे पर अभी तक ताड़ीखाना गुलज़ार था और इधर सड़क पर सन्नाटा छाया हुआ था—केवल सड़क पर पड़ी हुई चारपाइयों पर छोटी कौम के लोग लेटे हुए पंखे डुला-डुलाकर गर्मी के बेग को कम कर रहे थे।

'सामने वाले कौन ?' मैंने आश्चर्य के साथ पूछा—

'यही पीटर साहब। बनने को बड़े शरीफ आदमी बनते हैं' लेकिन रोज़ शराब पीकर गुलगपाड़ा मचाते हैं और औरत को बुरी तरह पीटते हैं। इनका आये दिन का यही काम है बाबूजी। इनके मारे चैन से सोना हराम है' करीम ने कहा।

मैं आश्चर्य-चकित था। इतने में मिसेज़ पीटर क्षत-विक्षत छज्जे पर भागकर आयीं और चिल्लाने लगीं

‘मार डाला, मार डाला !’

उनके बाल खुले हुए थे । पीछे से एक हन्टर लिये लड़खड़ाते हुए पीटर साहब आये और उसे घसीटकर अंदर ले गये । थोड़ी देर में चिल्लाना बन्द हो गया ।

करीम ने कहा ‘अभी हम छोटे आदमी ऐसा करें तो आप लोग हमें मुहल्ले से निकलवा दें । पीटर साहब बड़े आदमी हैं इसलिए आप लोग भी कुछ न कहेंगे इनको । बड़े आदमियों का जमाना है, छोटों का तो बस खुदा मालिक है ।’

मैं उसकी बात सुनकर लज्जा-सी अनुभव कर रहा था ।

करीम बोल उठा ‘जाइये, आराम कीजिय बाबूजी यह तो इनका रोज का काम है । सारी आमदनी शराब पी डालने में खर्च हो जाती है, पर नौकर को तनख्वाह तक नहीं देते ठीक से । किसी का पैसा बाक़ी हो तो उसे ज़िन्दगी भर न मिले पीटर साहब से । आप भी पीते हैं और मेम-साहब भी पीती हैं । बाल-बच्चों को कानपुर भेज दिया है पढ़ने के लिए ।’

मैं बिस्तर पर लौट आया । धर्मपत्नीजी सो रही थीं । मैंने उन्हें जगाकर कहा ‘तुम्हारी दोस्त ही पिट रही थीं और तुम उठों तक भी नहीं ।’

वे चौंककर बोलीं ‘कौन ?’

मैंने कहा ‘मिसेज़ पीटर ।’

—भलेमानुसों की बस्ती

और मैंने उन्हें सब कुछ बता दिया । वे बोलीं 'देखने में तो दोनों ही बड़े भले मालूम पड़ते हैं । इस ज़माने में किसी के भी बारे में क्या कहा जा सकता है ?'

(३)

उस दिन से मुझे पीटर साहब से घृणा-सी हो गयी । मेरी धर्मपत्नी भी मिसेज़ पीटर की तरफ से उदासीन हो गयीं । उन दोनों ने भी इस बात को अनुभव किया, किन्तु चुप रहे ।

मेरे मकान की दाहिनी तरफ एक मि० श्रीवास्तव रहते थे । साधारणतः बड़े आदमी थे, मकान भी था उनका निज का । स्त्री और दो छोटे छोटे बच्चे । धीरे धीरे उनसे भी जान पहिचान हो गयी और थोड़े ही दिनों में हम लोग घुल-मिलकर एक हो गये । न मि० श्रीवास्तव के यहां पर्दा होता था और न मेरे यहां ।

मिसेज़ श्रीवास्तव हम दोनों की बड़ी खातिर करती थीं । अघेड़ उम्र की, ज़रा ठिकने क्रद की तथा रंग ढका हुआ । इस विचित्र प्रकार से मुस्कराकर बात करती थीं जो मुझे ज़रा भी भला न लगता था । न जानें क्यों मेरा मन उनसे अधिक बात करने को न चाहता था । साथ ही साथ जहां मैं उनके घर जाता, झट सब काम छोड़कर आ जातीं, और 'ये खा लीजिये, वह खा लीजिये' की मुस्करा-मुस्कराकर झड़ी लगा देतीं । उनकी इस खातिरदारी के कारण मैं उनके घर भी बहुत कम जाता था । जब

कई दिन तक मैं न जाता तो वे मेरे घर आ पहुँचतीं और मेरी धर्मपत्नी ही के सामने मुस्करा मुस्कराकर न आने का उलाहना दिया करतीं ।

जब वे चली जातीं तो मैं कहता 'बड़ी बोलने वाली औरत है यह ।'

श्रीमतीजी मुस्कराकर कह देतीं 'तुम्हें तो बहुत चाहती हैं' मिसेज श्रीवास्तव ।'

मैं मुंह बनाकर रह जाता ।

थोड़े दिनों बाद मि० श्रीवास्तव की एक बहिन अपनी ससुराल से आ गयीं—नाम था मनोरमा । दुबली पतली साफ रंग की तथा देखने सुनने में आकर्षक । मैं थोड़े ही दिनों में उसके अधिक निकट आ गया । मैं उसे अपनी छोटी बहिन की तरह मानने लगा । वह भी दिन भर 'भैया-भैया' करके मेरे इर्द-गिर्द घूमा करती । ससुराल में उसकी कद्र न हुई—पतिदेव सुरादेवी की उपासना करते थे । थोड़े दिनों बाद एक और उन्होंने औरत घर में लाकर रख ली और मनोरमा उनका घर छोड़कर भाई के पास आकर रहने लगी । अपनी कथा कहते कहते मनोरमा रो पड़ती थी ।

मैं मनोरमा को कभी कभी पढ़ाया भी करता था । मिसेज श्रीवास्तव पहिले तो प्रसन्न हुई क्योंकि मैं अब उनके घर पहिले की अपेक्षा अधिक आने जाने लगा था, किन्तु मेरा और मनोरमा का इस प्रकार धुलना मिलना देखकर

—भलेमानुसों की बस्ती

उन्हें ईर्ष्या होने लगी। वे यह समझने लगीं कि मैं और मनोरमा एक दूसरे के प्रेम में बंधते चले जा रहे हैं।

एक दिन मैं लगभग १० बजे रात तक ऊपर के कमरे में बैठा मनोरमा को पढ़ाता रहा। वह इन्टर की परीक्षा देने की तैयारी कर रही थी। नीचे मिसेज श्रीवास्तव के दोनों बच्चे शोर मचा रहे थे और मिसेज श्रीवास्तव उन्हें चुप कराने और सुलाने में व्यस्त थीं। मि० श्रीवास्तव अभी तक क्लब से न लौटे थे।

मैं मनोरमा को पढ़ाकर नीचे उतरा। मिसेज श्रीवास्तव बच्चों को सुला चुकी थीं। मुस्कराकर बोलीं 'अब ननदजी से ऐसी आंख लगी है कि मुझसे बोलना भी छोड़ दिया।'।

मैं कुछ क्षण-सा गया। वे और निकट आकर बोलीं 'हमारे ही घर में डाका डालोगे और हमीं से दूर दूर।'।

उन्होंने बहुत ही निकट आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और बोलीं 'मैं सब कुछ जानती हूँ। इस तरह माल लूट कर सहज में बाहर न जा सकोगे बाबू। ज़रा इधर तो आओ।'।

और वे मुझे खींचकर पलंग के पास ले गयीं। मेरा जी धड़कने लगाने लगा। कैसी औरत है यह?

बोली 'आज न जाने पाओगे। मैं तुम्हें समझती हूँ और सभी कुछ रोज़ आंख से देखती हूँ। मगर—मगर मुझे क्या एतराज है? ज़रा मेरा भी.....'

में बात काटकर बोल उठा 'मगर मनोरमा मेरी बहिन है।'

वह ठहाका मारकर हंसी और बोली 'यह तो आजकल का फैशन है बाबू। मगर मुझे इन बातों से क्या?'

उसने मुझे पकड़कर खींचा। और कुछ उपाय न देखकर मैंने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया और लपक कर घर से बाहर हो गया।

घर पहुंचा तो उसकी आवाज कमरे तक सुनायी दे रही थी। वह चिल्लाकर कह रही थी 'बड़े भले बनते हैं। चोरी चोरी परायी बहू-बेटियों पर नज़र डालेंगे और ऊपर से भले बनेंगे। मोहल्ले में रहना मुश्किल कर दूंगी-मुश्किल! क्या नीच जातों का घर समझ लिया है?'

और न जाने क्या क्या ऊटपटांग बके चली जा रही थी। मैं घबड़ा गया।

श्रीमतीजी ने कहा 'यह क्यों हल्ला मचा रही है? हुआ क्या, जरा पूछूं तो?'

मैं घुटते गले से बोला 'यह मुहल्ला रहने काबिल नहीं है। न जाने कैसे लोग इसमें बसते हैं। मैं कल ही इस घर को खाली कर दूंगा।'

और दूसरे दिन ही मैंने घर बदल दिया।

फूला

(१)

फूला का पति सरजू जब उसे पीटता है तो बुरी तरह पीटता है । लातों, घूसों तथा डंडों से बुरी तरह पीटने के बाद फूला रोती है, कराहती है और फिर नहा-धोकर नित्य के काम में लग जाती है ।

फूल-सी कोमल, संगमरमर-सी श्वेत और खंजन-से नैन वाली स्त्री पाकर भी सरजू कहार कभी उस पर दया नहीं करता । न वह उसे ठीक से खिला सकता है, न अच्छे वस्त्र पहिना सकता है और न उसे इस अंधेरी कोठरी के अतिरिक्त और किसी अच्छे साफ-सुथरे स्थान पर रख ही सकता है । पर उसे इन सब बातों से क्या मतलब ? वह उसकी औरत है—व्याहता ! उसे जैसा रखे वैसे रहना चाहिए । काम न करेगी तो फिर मार क्यों न खायगी ? फूला चाहे जैसी सुन्दर हो, सुकोमल हो किन्तु सरजू के लिए तो वह सिर्फ घरवाली ही थी न ? वह जा कहां सकती है ?

प्रदर्शनी—

उसी अंधेरी कोठरी के ऊपर वाले हिस्से में रहता है कैलाश—अपनी पत्नी उर्मिला के साथ । कैलाश सुन्दर है, युवक है । जवानी के वरदान से ओत-प्रोत, पैसे वाला है, और है शिक्षित । उर्मिला अर्द्ध-शिक्षित, साधारण वर्ण की, छड़ी-सी पतली और उद्धत स्वभाव वाली । पति पर शासन करती है, ठाठ-बाट से रहती है, और है शाह-खर्च । कैलाश की क्या मजाल कि आठ बजे रात के बाद कहीं बाहर रह जाय ! घूमने जाय तो उर्मिला को साथ ले जाय, मित्र-मंडली में कहीं गोष्ठी हो—दावत हो, तो वह बिना उर्मिला के जा नहीं सकता । उसे जरा कहीं किसी बात में असु-विधा हुई तो झट उसने पति को आड़े हाथों लिया । घर में नौकर-चाकर हैं, उर्मिला को कुछ काम नहीं करना पड़ता । पड़े पड़े पुस्तकें पढ़ा करती है, अँगड़ाइयां भरती है, सोती है और शाम के पहिले, क्रीम, पाउडर और पफ से अपनी असुन्दरता को छिपाकर पति पर शासन करने के लिए तैयार हो जाती है ।

नौकर कहते—‘बाबू का भी किस चुड़ैल से पाला पड़ा है !’

खाना पकाने वाली मिसरानी कहती, ‘अगर कहीं खूब-सूरत होती तो बाबू को समूचा ही निगल जाती ।’

किन्तु कैलाश को इससे क्या ? वह बीसवीं शताब्दी की स्त्री है, बराबर की पार्टनर है, घर की मालिक है—उससे डरना ही चाहिए ।

उर्मिला भवों पर बल डालकर सोचती—‘पुरुषों से डरकर ही स्त्रियों ने अपनी दशा बिगाड़ी है। अब हम लोग डरेंगे नहीं। यदि हमसे शासित न होंगे पुरुष—तो उनका रास्ता अलग है और हमारा अलग !’

कैलाश सरजू और फूला का परस्पर का व्यवहार देखता तो कह पड़ता—‘अजब औरत है ! न जाने क्यों इतनी मार खाकर भी इसी के पास पड़ी हुई है ?’

और कैलाश और उर्मिला का हाल सुनकर सरजू कह देता, ‘यह बाबू लोगों का घर नहीं है जो तू निठल्ली पलंग पर बैठकर हुकूमत करे। ठीक से काम न किया तो एक दिन सिर काटकर रख दूंगा।’

(२)

किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी था—कैलाश फूला का सौंदर्य देखता और एक लम्बी सांस लेकर रह जाता। फूला भी उसे सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देख लेती और उसके चेहरे पर न जाने किस प्रकार का एक करुणा का आभास-सा झलक आता।

उर्मिला सरजू का उद्दंड शरीर, उसका कठोर व्यापार और उसके शरीर और स्वभाव की कठोरता तथा उसका एकछत्र शासन देखती तो सिहर कर रह जाती। इच्छा न रहते हुए भी उसके मुंह से निकल जाता, ‘यह पुरुष है.....किन्तु.....’

फूला पर उसका अत्याचार देखकर उसका हृदय शीघ्र

ही धृणा से भर जाता ।

किन्तु कैलाश का व्यवहार फूला को देखकर लम्बी सांसों तक ही सीमित न रह सका । वह दिन-प्रतिदिन उसके सौंदर्य के प्रति आकर्षित होता जाता था । जब फूला पर मार पड़ती तो उसके हृदय में एक पीड़ा-सी होने लगती । उसकी तबियत होती कि वह सरजू के गोली मार दे तथा फूला को अपनी पलकोंपर बिठलाकर कहीं सदैव के लिए चला जाय । किन्तु—क्या उसकी यह कल्पना कभी कार्य-रूप में परिणत हो सकेगी ?

कैलाश के घर में कभी-कभी मित्रों का जमाव लगता था, पार्टी होती और बहता अधकचरे और वेदनापूर्ण संगीत का प्रवाह । उर्मिला भी इस समारोह में भाग लेती और सबसे घुलमिलकर बात करती ।

रवीन्द्र कहता—‘उर्मिलाजी, आप भी एक गाना सुनाइये ।’

उर्मिला मुस्कराकर कह देती, ‘मुझे नहीं आता गाना ।’

सुरेन्द्र कहता—‘एक गाना तो सुनाना ही पड़ेगा आपको ।’

उर्मिला सिर हिलाकर अस्वीकृति प्रकट करती ।

कैलाश कुछ खीझकर कहता—‘तो सुना क्यों नहीं देती एक गाना !’

और उर्मिला गाने लगती—

‘जिन्दगी का साज भी क्या साज है ।’—

‘वाह-वाह’ से मित्र उसका सत्कार करते । रवीन्द्र

हंसकर कहता—‘गुणी को तो मैं ही पहिचान सकता हूँ
कैलाश ! उर्मिलाजी के गाने में कितना दर्द है ?’

उर्मिला उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखती और
मुस्कराकर सिर नीचा कर लेती ।



उस दिन उर्मिला ज़रा अस्वस्थ थी । बाहर के कमरे
में बैठे हुए सुरेन्द्र ने कैलाश से कहा, ‘तुम भी बेकार के
आदमी हो कैलाश ! तुमसे कुछ भी लाभ नहीं ।’

कैलाश बोला—‘तो फिर क्या कुछ खाने पीने के लिए
मन चल आया ।’

उसके कंधे पर हाथ रखते हुए सुरेन्द्र बोला—‘अरे, खाने-
पीने से भी बढ़िया ! वह जो (धीरे से) नीचे रहती
है तुम्हारे घर के.....’

कैलाश बोला—‘कौन ? फूला !’

‘हां-हां, यार, कितनी सुन्दर है ?’ सुरेन्द्र के मुंह से
निकला ।

कैलाश एक हलकी सांस लेकर बोला—‘मगर उसका
आदमी इतना पाजी है कि बस.....’

सुरेन्द्र बोल उठा—‘उंह, हमको उसके आदमी से क्या
करना है ! तुम तो कोरे बुद्ध रहे ।’

बात टालने की नीयत से कैलाश ने कहा—‘अरे यार,
वह ऐसी औरत नहीं है । और हां, यह तो बताओ कि
तुम मंसूरी कब जा रहे हो ?’

सुरेन्द्र रंग जमता न देखकर बोला—‘कैलाश ! कदाचित् तुम्हारे बूते का यह रोग नहीं है ! एक तो तुम्हारी श्रीमती जी.....’

बात काटकर कैलाश बोला—‘वे तो दो-तीन दिन में अपनी मां के घर जा रही हैं ।’

खुश होकर सुरेन्द्र बोला—‘तब तो मैदान साफ है । तुम क्या उन्हें पहुंचान जाओगे ?’

‘नहीं । रवीन्द्र लखनऊ जा रहा है अपने एक काम से, उन्हीं के साथ चली जायंगी ।’ कैलाश ने कहा ।

सुरेन्द्र बोला—‘तब तो काम बन जायगा ।’

कैलाश चुप रहा । उसे इस ओर से उदासीन देखकर सुरेन्द्र ने अधिक बात न की ।

(३)

धीरे-धीरे अवसर पाकर कैलाश फूला से दो एक बात भी कर लेता । शाम को प्रायः सरजू अपनी नौकरी पर रहता और फूला जीने के पास ही चारपाई बिछाकर बैठी रहती ।

कैलाश कहता—‘अच्छी तो हो फूला ।’

फूला कह देती—‘जी हां बाबूजी !’

कैलाश जीने के पास ठिठक जाता और कहता हंसकर, ‘कबसे मार नहीं पड़ी फूला ।’

फूला कहती—‘मार तो भाग्य ही में लिखाकर लायी हूं बाबूजी ! मरदों का क्या ठीक ? कभी खुश हुए और

कभी पीट दिया ।'

कैलाश कहता—'फूलों में रहने लायक हो फूला तुम !
तुम्हें कोई कैसे मार सकता है ! मैं तो तुम्हें पलकों पर
रख लेता ।'

फूला लजाकर कहती—'ये तो सब पूर्वजन्म के संयोग
से होता है बाबूजी !'

कैलाश और आगे बढ़ता, 'मुझे तो तुम बहुत अच्छी
लगती हो फूला ।'

फूला संकोच से चुप रहती ।

कैलाश कहता—'मैं भी तुम्हें अच्छा लगता हूँ फूला !'

फूला कह देती—'अच्छी चीज सभी को अच्छी लगती
है । मगर कहां आप और कहां मैं !'

पुलकित होकर कैलाश कहता—'तो फिर राजी हो;
आओ कहीं भाग चलें ।'

बात टालने की नीयत से फूला कहती—'अब हमारा
आदमी आता होगा बाबूजी !'

और कैलाश ऊपर चला जाता ।

इस प्रकार दोनों एक दूसरे के निकट आते मालूम
पड़ते थे ।

दो दिन बाद उर्मिला रवीन्द्र के साथ लखनऊ चल दी ।

रवीन्द्र ने रास्ते में कहा—'रुपये ठीक से रख लिये हैं ?'

उर्मिला ओठों पर अंगुली रखती हुई बोली—'बस, चुप !'

रवीन्द्र मुस्करा दिया ।

फर्स्ट क्लास का कम्पार्टमेंट ! अकेले दो प्राणी—एक स्त्री और एक पुरुष !

गाड़ी चल दी ।



उर्मिला के चले जाने के बाद कैलाश फूला के पीछे पड़ गया । फूला सरजू की याद करके कांप उठती थी ।

एक दिन कैलाश ने कह दिया, 'तो फिर कब फूला ?'

फूला संकोच के साथ बोली, 'कैसी बातें करते हैं, आप ?'

आज पहिली बार कैलाश ने उसका हाथ पकड़ा । चारों ओर अंधेरा था । फूला ने अपना हाथ खींचा । कैलाश ने कहा—'ऊपर आ जाओ फूला । कमरे में कोई नहीं है ।'

फूला चुपचाप खड़ी रही ।

इतने में किसी के आने की आहट पायी तो कैलाश ऊपर चल दिया ।

दूसरे दिन उसने फिर फूला से भेंट की । बोला—'अब नहीं रहा जाता तुम्हारे बिना फूला ।'

फूला चुपचाप खड़ी रही ।

कैलाश बोला—'तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा । मैं रोज तुम्हारी इस प्रकार दुर्दशा नहीं देख सकता — वह नराधम रोज जब तुमको मारता है तो मेरा हृदय फटने लगता है । बोलो, चलोगी मेरे साथ ?'

फूला सिर झुकाये खड़ी रही ।

कैलाश ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया । आज



फूला ने विरोध नहीं किया, उसी प्रकार खड़ी रही ।

कैलाश ने कहा—‘जीवन आनन्द के लिए है फूला ! तुम्हारा फूल-सा शरीर क्या कष्ट सहने के लिए है ? तो फिर.....’

फूला धीरे से बोली—‘आप बड़े दयावान हैं बाबूजी ।’

कैलाश ने उसे कुछ निकट खींचते हुए कहा—‘तो फिर बोलो । कल ही मैं तुम्हें लेकर यहां से चल देना चाहता हूं ।’

अब फूला का मुंह खुला—‘आप मुझे ले जाकर क्या करेंगे बाबूजी ? भगवान् ने तो मुझे दूसरे की ओरत बना दिया है ।’

कैलाश बोला—‘मैं तुम्हें रानी बनाऊंगा फूला ! तुम्हें सुखी करूंगा ।’

फूला बोली—‘किन्तु मैं अपने आदमी को घोखा कैसे हूं बाबूजी ? यह तो बुरी बात है ।’

कैलाश कुछ खीझकर बोला—‘उस आदमी को घोखा देना बुरा नहीं है जो रोज तुम्हारे साथ जानवरों की तरह बर्ताव करता है । मैं तो.....’

बात काटकर फूला बोल उठी—‘औरत का जामा पाकर मर्द की बात सहनी ही पड़ती है, बाबूजी ! वह कुछ भी करे फिर भी मेरा आदमी ही है ।’

कैलाश ने देखा, मामला उखड़ रहा है । बोला—‘मैं तुम्हें प्यार करता हूं फूला ! क्या तुम्हें मेरा ग्याल नहीं है ?’

क्षणभर चुप रहकर फूला बोली—‘आप बहूजी को प्यार क्यों नहीं करते । वे तो बड़ी अच्छी हैं ।’

कैलाश बोला—‘मगर वे तुम्हारे पैरों की धूल भी नहीं हैं ।’

फूला जल्दी ही बात समाप्त करना चाहती थी, बोली—‘मगर क्या करूं बाबू, अपना धरम नहीं छोड़ा जाता । जो मारता है वह प्यार भी तो करता है । उसने कभी जिन्दगी में किसी दूसरी औरत से बात भी नहीं की । मैं भला उसे धोखा कैसे दे सकती हूं ? अगर मारता है तो मार लेने दो । औरत की इससे इज्जत नहीं जाती । मैं उसे नहीं छोड़ सकती बाबूजी ! आप नाराज न हों ।’

कैलाश नाराज होकर बोला—‘तो फिर पिटती रहो । और.....’

फूला बोल उठी—‘मैं पिटने से नहीं डरती, हां, करोड़ रुपये की इज्जत खो देने के बाद वह मुझे नहीं मिल सकती बाबूजी ।’

कैलाश चुप रहा । फूला बोली—‘मैं उसे न छोड़ सकूंगी । थोड़े दिन की जिन्दगी है और कट जायगी—कब तक मारेगा ? आखिर कभी तो खुश होगा ही वह ।’

कैलाश चुपचाप ऊपर चला गया ।

और—

रात को उसने सुना—फूला पर पड़ रही है डंडों की मार । सरजू कह रहा था—‘ससुरी, हड्डियां तोड़कर रख

दूंगा.....और न जाने क्या-क्या ?'

कैलाश का चित्त ठिकाने न था। वह लगभग १० बजे पान खाने के लिए नीचे उतरा।

सीढ़ी के पास पलंग पर लेटा हुआ सरजू कह रहा था—'देख, इन मंहगाई के दिनों में भी बड़ी मुश्किल से ढाई छटांक का बढ़िया घी तेरे लिए लाया हूं। खाने में कोताही न कर, नहीं तो सोने की देह मिट्टी हो जायगी। मुझे क्या मेरे लिए तो 'दालदा' ही बहुत ठीक है। सुना फूला ! और तेरा हार तीन चार दिम में बनकर आ जायगा।'

कैलाश ठिठककर सुनता रहा और फिर आगे बढ़ गया।



उर्मिला फिर लौटकर न तो वापिस आयी और न अपने बाप के घर पहुंची। थोड़े दिनों बाद कैलाश को मालूम हो गया कि वह रवीन्द्र के साथ अपना 'नया संसार' बसाने के लिए कहीं सदैव के लिए चली गयी।

उसके मुंह से बार बार निकलता था—'फूला ! उर्मिला—फूला—उर्मिला !'

इस बार तो मैं जीता

(१)

भास्कर आज बुरी तरह हार रहा था । रमेश ने हंसकर कहा 'खेलने चले हैं ! जब खेलना न आता हो तो खेले ही क्यों ?'

भास्कर खिसिया गया । वह चौपड़ के खेलने में अपने को पटु समझता था, किन्तु न जाने क्यों आज वह बार बार हार रहा था । बोला 'पाँसा पड़े और अनाड़ी जीते, नहीं तो तुम कबसे खिलाड़ी हुए ?'

रमेश बोला 'अस्वहाह, आप भी अपने को खिलाड़ी समझते हैं । सियाना कौआ.....'

भास्कर बोल उठा 'बहुत ज्यादा बक बक मत करो । मुझे फिजूल की बात पसन्द नहीं है ।'

रमेश बोला 'अगर हार से तबियत न भरी हो तो एक बार और खेल लो ।'

चौपड़ बिछाते हुए भास्कर बोला 'हां-हां, आजाओ । अब की बार हरा न दिया तो भास्कर नाम नहीं ।'

—इस बार तो मैं जीता

खेल फिर प्रारम्भ हो गया, किन्तु आज विजय-श्री उसके भाग्य में न थी। वह फिर हारने लगा और थोड़ी ही देर में बेतोड़ की बाजी हार गया।

मित्रों ने ठहाका लगाया। गर्व से ऊंचा सिर किये रमेश ने कहा 'खूब खेलते हैं आप भास्करजी ! क्या कहने हैं आपके ?'

भास्कर उत्तेजित हो गया था। लाल लाल आंखें करके बोला 'बहुत आगे न बढ़ो रमेश, नहीं तो अच्छा न होगा ?'

रमेश मुंह बनाकर बोला 'हार गये तो खिसियाते क्यों हो ? और तुम मेरा कर ही क्या लोगे ?'

दांत किटकिटाकर भास्कर बोला 'अगर एक शब्द भी कहा तो दांत तोड़कर रख दूंगा।'

वह उठकर खड़ा हो गया। उसे इस प्रकार उत्तेजित देखकर रमेश चुप हो गया।

भास्कर जाते हुए बोला 'इस बार तुम जीत गये तो क्या हुआ ? शीघ्र तुम्हें इसका फल दिखा दूंगा। देखूं, आगे चलकर कौन जीतता है ?'

वह अकड़कर बाहर चला गया। मित्रों ने फिर ठहाका लगाया।

सुरेन्द्र बोला 'कमजोर और गुस्सा ज्यादा !'

मोहन बोल उठा 'यही तो मार खाने की निशानी है।'

भास्कर ने जाते जाते सब कुछ सुन लिया था।

(२)

भास्कर और रमेश एक ही कक्षा और एक ही कालेज के विद्यार्थी थे। रमेश पढ़ने में तेज था और भास्कर कालेज का प्रसिद्ध खिलाड़ी था।

उस दिन की घटना को शीघ्र ही कदाचित् दोनों ही भूल गये। भास्कर और रमेश फिर घुल-मिलकर एक हो गये।

एक दिन कक्षा के सभी विद्यार्थी नगर से बहुत दूर 'पिकनिक' का आनन्द लेने के लिए पहुंचे। खेल तमाशो हुए, गाने गाये गये, भोजन बना और कविताएँ पढ़ी गयीं।

संध्या के समय भास्कर और रमेश घूमते हुए आगे बढ़ गये। रमेश डूबते हुए भगवान् अंशुमाली की किरणों की वैज्ञानिक महत्ता पर कुछ सोच रहा था और भास्कर चुपचाप उसके पीछे चला जा रहा था।

एक स्थान पर पहुंचकर रमेश रुक गया और बोला, 'कितना मनोहर दृश्य है भास्कर ! जी चाहता है यहां से लौटें ही नहीं।'।

भास्कर बोला 'और हम लौटने देना भी नहीं चाहते रमेश।'।

रमेश ने पीछे घूमकर देखा। भास्कर के हाथ में एक चमकता हुआ छुरा था।

रमेश आश्चर्य के साथ बोला 'हैं, यह क्या भास्कर ?'

भास्कर लाल लाल आंख करके बोला 'चल, अब मरने

इस बार तो मैं जीता

के लिए तैयार हो जा । देखें, इस बार कौन जीतता है ?’

किन्तु रमेश डरा नहीं । किंचित् आगे बढ़कर बोला ‘बीर इस प्रकार बदला नहीं लिया करते भास्कर ! कायर कहीं का ! आ, चला छुरा !’

भास्कर ने बार नहीं किया । क्षणभर तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर एक ओर छुरा फेंककर तीव्र गति से वापिस लौट गया ।

रमेश बड़ी देर तक कुछ सोचता रहा, फिर डेरे पर लौट आया ।

(३)

देश में कांग्रेस द्वारा संचालित सविनयअवज्ञा आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था । आन्दोलन की उग्रता देखकर शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के पैर भी डगमगाने लग गये थे । दमन-चक्र जारी था; हजारों देश-भक्त जेलों में ठूस दिये गये, सैकड़ों को प्राणों से हाथ धोना पड़ा और न जाने कितने घर बरबाद हो गये । लाखों व्यक्तियों ने विदेशी वस्तुओं का प्रयोग छोड़ा, न जाने कितनों ने सरकारी नौकरियां छोड़ीं, वकीलों ने वकालत छोड़ दी तथा विद्यार्थियों ने कालेज छोड़ दिये ।

रमेश कालेज छोड़कर आन्दोलन में भाग लेने लगा, किन्तु भास्कर कालेज का कीड़ा ही बना रहा ।

रमेश ने कहलवाया ‘कुछ देश का भी तो ख्याल करो । क्या गुलाम ही बने रहोगे भास्कर ?’

भास्कर ने कहलवा दिया 'मुझे बख्शो ।'

धीरे धीरे रमेश नगर कांग्रेस-कमेटी का मंत्री हो गया ।
नगर में उसकी ध्वाक थी ।

आज नगर में जवाहर-दिवस मनाया जाने वाला था ।
प्रातः से ही पुलिस ने सारा नगर घेर लिया था । लोग
जुलूस निकालने पर तुले हुए थे और अधिकारी उसे रोकने
के लिए कमठ कसे हुए थे । दोपहर होते होते सैकड़ों नर-
नारी संदेह ही में गिरफ्तार कर लिये गये । चौराहे पर
घुड़बंद सवार लगे थे । अंग्रेज की दृष्टि में प्रत्येक भार-
तीय बागी था । वह चाहता था कि उन्हें खोदकर गाड़
दिया जाय जो आज निषेध होने पर भी जुलूस निकालने
पर तुले हुए हैं ।

किन्तु जुलूस उठकर ही रहा । आगे आगे तिरंगे
झंडे लिये महिलाएं थीं, उनके पीछे चार चार की कतार
में लगभग ५० स्वयंसेवक थे तथा उनके बाद राष्ट्रीय
नारे लगाती हुई जनता थी । रमेश जुलूस का नेतृत्व कर
रहा था ।

सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस मि० नाक्स ने दलबल सहित घोड़ा
आगे बढ़ाकर जुलूस रोका । जोरों के नारे लगने लगे ।

मि० नाक्स ने कहा 'जुलूस भंग करो !'

रमेश ने स्फुट-स्वर से कहा 'ऐसा कभी न होगा ।
आप हमको गिरफ्तार कर सकते हैं ।'

सुपरि० पुलिस क्रोध से लाल होकर बोला 'हम गोली

—इस बार तो मैं जीता

चला देंगे ।’

रमेश बोला ‘आप चला सकते हैं । हमको गोलियों का डर नहीं है ।’

मि० नाक्स चिल्लाकर बोले ‘औरतों को हटाइये, हम लाठी चार्ज करेंगे ।’

रमेश ने स्त्रियों की ओर देखा । महिलाओं का नेतृत्व करती हुई एक ६० वर्ष की वृद्धा ने आगे बढ़कर साहब से कहा ‘हम कभी न हटेंगे । आप लाठी-चार्ज कर सकते हैं ।’

रमेश उसे हट जाने के लिए समझाने लगा । वह चाहता था कि महिलाएँ हट जायं ।

वृद्धा ने कड़ककर कहा ‘आप क्या कह रहे हैं मंत्रीजी ? स्त्रियां भी देश के लिए मरना जानती हैं ।’

रमेश चुपचाप अलग हट गया । वृद्धा ने सीना तानते हुए सुपरि० पुलिस से कहा ‘हम न हटेंगे, आप लाठियां चलाइये ।’

मि० नाक्स आग बबूला हो गये । उनके हाथ में एक लम्बा-सा मोटा डंडा था । उन्होंने किटकिटाकर डंडे का भरपूर बार वृद्धा पर किया ।

बिजली की तरह आगे बढ़कर एक नवयुवक ने डंडा अपने सिर पर लिया । वह मरणासन्न होकर भूमि पर गिर पड़ा ।

रमेश ने पहिचाना, वह भास्कर था ।

उसने धबड़ाकर कहा ‘यह क्या किया भास्कर तुमने ?’

दम लोड़ते हुए भास्कर ने दांत किटकिटाकर कहा,
‘गयर, इस बार तो मैं जीता !’



इस बार तो मैं जीता

कठोर सत्य

(१)

जीवन की कठिनाइयों से घबड़ाये हुए रामकिंकर के मुंह से निकला 'संघर्ष ! संघर्ष !! क्या यही संघर्ष है ?'

मेज पर विमटो का गिलास रखा हुआ था । रामकिंकर ने एक चुसकी ली और फिर सोचने लगा 'कहते हैं संघर्ष ही जीवन है । बेवकूफ कहीं के । यदि इसी कठोर सत्य को गले के नीचे उतारते रहना है तो जितनी जल्दी इस जीवन का — इस संघर्ष का—अंत हो जायगा उतना ही अच्छा है । और नहीं तो क्या——'

वह बड़बड़ाया 'यदि निरन्तर संघर्ष के बाद शाम को पेट भरने के लिए मिल जाय तो क्या यही सफलता है ? संघर्ष का यही कथित आनंद है ? झूठ, गलत, सरासर गलत ।'

वह चुसकी लेना भूल गया । विमटो का गिलास

प्रदर्शनी—

अपनी शीतलता खोता जा रहा था ।

बेअरा देख रहा था कि विमटो के गिलास के चार आने देकर बाबूजी आध घंटे से बिजली के पंखे की हवा मुफ्त में खा रहे हैं । सामने आकर बोला 'बाबूजी ।'

रामकिंकर ने उसकी ओर लापरवाही से देखकर कहा 'क्या ?'

बेअरा सलाम करके बोला 'कुछ और लाऊं ?'

रामकिंकर विमटो के लिए चार आने आज खर्च कर सका यही क्या कम है ? सारा गिलास एकदम खाली करके वह बोला 'कुछ नहीं । कितने पैसे हुए ?'

'चार आने ।'

रामकिंकर ने अठन्नी निकालकर उसके हाथ पर धर दी । बेअरा चला गया ।

रामकिंकर सोचने लगा 'यह भी संघर्ष-आन्दोलन का एक सैनिक है । यह बेअरा ! क्या संघर्ष करना पड़ता है इसे ? दिन भर इनाम-इकराम, खाना-पीना और महीने के अंत में बंधा हुआ खरा वेतन । तब क्या यह भी संघर्ष है ? गलत—'

वह उठकर रेस्तरां के बाहर आ गया । बेअरा ने दौड़कर कहा 'बाबूजी, पैसे ले लीजिये ।'

रामकिंकर पैसे लेकर सड़क पर आ गया । उसे याद आया कि आज रात को उसे अपने मित्र अमरनाथ के यहां भोजन का आमंत्रण है । 'वह क्यों जाय उसके यहां भोजन

करने के लिए ? और फिर यह क्या न्याय है कि एक व्यक्ति को पेट भरने के लिए दिन भर संघर्ष करना पड़े और दूसरा इतना सुखी कि अन्य लोगों को अपने यहां भोजन के लिए बुलाये ? तो फिर क्या अमरनाथ को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता ? जो व्यक्ति अपने मानसिक आनन्द के लिए दूसरों को बुलाकर अपने यहां खिला सके उसे संघर्ष की आवश्यकता ?'

आज दो महीने से ऊपर हो गये किन्तु रामकिंकर को ५०) की भी नौकरी न मिली थी । उसे अपने परिवार—जिसमें उसकी स्त्री, दो बच्चे और एक विधवा बहिन थी—का खर्च बड़ी कठिनाइयों से चलाना पड़ रहा था । बाहर वाले उसे सुखी समझते, सम्पन्न जानते तथा उसका मान करते । घर की दशा कोई न जानता था । अपनी इस शून्य प्रतिष्ठा को लेकर वह अपने किसी मित्र के सामने हाथ न पसार सकता था, किसी से सहायता के लिए अनुरोध न कर सकता था, किन्तु फिर वह करे क्या ? उसने कालेज में पढ़ा था कि संघर्ष ही जीवन है और जीवन संघर्ष-मय है । इसी सिद्धांत के बल पर वह अथक् योद्धा की भांति कठिनाइयों से लड़ता आया है । उसने संघर्ष किया है । किन्तु—किन्तु इतने दिनों बाद उसने अनुभव किया कि सभी सुखी हैं, सभी का संघर्ष फलदायक है और साथही साथ सभी को संघर्ष की आवश्यकता भी नहीं ।

उसका हृदय आज इस सिद्धांत के विरुद्ध विद्रोह कर

प्रदर्शनी—

उठा। 'संघर्ष का पाठ निर्धन के लिए है' वह तै कर बैठा। 'संघर्ष का सिद्धांत मानव को बल अवश्य देता है किन्तु वह अस्थायी है, दिखावटी है और तत्वहीन है। जीवन का कठोर सत्य कुछ और ही है। फिर यह संघर्ष का सिद्धांत समाज पर लागू नहीं, लागू है केवल व्यक्ति पर—परिस्थिति पर—'

वह सहसा पार्क के पास रुक गया। धनिकों के छोटे-छोटे बच्चे विभिन्न रंगों के सुन्दर फिराक और झबलों से ढके हुए खेल रहे थे—साथ में उनकी रक्षा और देख भाल के लिए थे नौकर चाकर। रामकिंकर के भावों की धारा आज अविराम थी। उसने सोचा 'इन बच्चों के माता-पिता ही नहीं वरन् इनके नौकर चाकर भी कितने सुखी हैं, कितने मस्त हैं। इनके पास मान नहीं, मर्यादा नहीं और न है मिथ्या प्रदर्शन। आनन्द से खाते हैं, परिवार का पालन करते हैं और महीने के अन्त में मिलने वाले वेतन को पृथ्वी में गाड़कर रखते हैं।'

वह बेंच पर बैठकर बच्चों की क्रीड़ा देखने लगा। उनमें से एक नौकर ने उसके पास आकर कहा 'दियासलाई है बाबूजी?'

रामकिंकर को याद आया कि आज वह धूम्रपान बिल्कुल भूला ही हुआ है। उसने जेब से सिगरेट निकाली और उसे सुलगा कर दियासलाई की डिब्बी नौकर को दे दी।

नौकर ने बीड़ी सुलगाई और वहीं पास में बैठकर

पीने लगा ।

रामकिंकर पूछ बैठा 'किसकी नौकरी करते हो ?'

नौकर बीड़ी को दोनों अंगुलियों के बीच में दबाता हुआ बोला 'सेठ ध्यानचंद के यहां नौकर हूं बाबूजी ।'

सेठ ध्यानचंद नगर के एक बहुत बड़े व्यवसायी और लक्षपति थे ।

रामकिंकर क्षण भर चुप रहकर बोला 'क्या तनखाह मिलती है तुम्हें ?'

नौकर कुछ उदास-सा चेहरा बनाकर बोला 'यही २५) मिल जाते हैं बाबूजी ।'

रामकिंकर बोला 'तुब तो तुम्हारी गुजर बड़े मजे में हो जाती होगी ?'

नौकर थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर बोला 'क्या गुजर होती है बाबूजी । रो-पीटकर किसी तरह काम चल जाता है । इसी पेट के लिए परदेश में आकर पड़े हैं—गांव में मां-बाप, औरत और सात बच्चों को छोड़ आया हूं । २०) उन्हें भोज देता हूं और किसी तरह ५) में अपनी गुजर करता हूं । एक बखत खाना मिलता है और दूसरी जून अगर जूठन-कूठन मालिक के यहां से न मिल गयी तो बस भगवान् का नाम लेकर सो जाता हूं ।'

वह चुप हो गया । रामकिंकर गौर से उसके मुंह की ओर देख रहा था । नौकर आंखों में पानी भरकर बोला, 'इधर ४-५ महीने से घरवाली बीमार है बाबूजी । एक

कबुलिये से २०) कर्ज काढ़कर उसकी दवा-दारू के लिए भेज दिये थे। यह रिन भी ऊपर लदा हुआ है—भगवान् जाने कैसे बेड़ा पार होगा ? रात-रात-भर नींद नहीं आती बाबूजी । इज्जत-आबरू का मामला है; कब तक तक-दीर से लड़ता रहूँ ।’

उसने मैले अंगोछे से अपने आंसू पोछ लिये । अभी क्षण भर पहिले रामकिंकर को इसी नौकर के भाग्य पर ईर्ष्या हो रही थी ।

अंधेरा बढ़ रहा था । रामकिंकर उठकर पार्क के बाहर आ गया । उसके मस्तिष्क का द्वन्द्व वैसे ही चल रहा था ।

सामने इक्के वाले को देखकर वह बोला ‘चौक चलोगे भाई ?’

इक्के वाले ने कहा ‘आइये ।’

‘क्या लोगे ?’

‘तीन आने ।’

रामकिंकर इक्के पर बैठ गया । वह जानता था कि इक्के वाला चार पैसे ज्यादा मांग रहा है ।

इक्के वाले ने बीड़ी सुलगाकर मुंह में दबायी और गाता हुआ चल दिया ।

रामकिंकर बोल उठा ‘८-१० रुपये तो पैदा कर लेते होंगे रोज ?’

इक्के वाला बोला ‘८-१० रुपये पैदा कर लेने से क्या

होता है बाबूजी ? ४) रोज तो यह साला घोड़ा ही खा जाता है । रुपया-घेली रोज इक्के की मरम्मत के लिए चाहिए । इसके अलावा रोज चालान, रोज रिश्कत देना और कहीं अगर घोड़ा बीमार हो गया तो फिर फाका ही करना पड़ता है । महाजन से कर्ज लेकर आज तीन साल हुए ५००) का यह घोड़ा इक्का खरीदा था । असल क्या अभी सूद तक की भी एक पाई अदा नहीं हुई है । इधर २०) जोड़कर महाजन को देने के लिए रखे थे सो अभी चार दिन हुए लाटूश-रोड के पास कमबस्त घोड़ा मोटर लारी से टकरा गया । बस मरम्मत ही में २०) स्वाहा हो गये और चालान हो गया ऊपर से । अभी आज सवेरे ही तो इसे चार दिन बाद जोता है । समझ में नहीं आता कि क्या करूं ?'

कहकर इक्के वाले ने एक सांस ली ।

रामकिंकर भी बिना एक सांस लिये न रह सका ।

(२)

अमरनाथ ने कहा 'तुम्हारे आ जाने से तबियत बड़ी प्रसन्न हुई । इधर कई रोज से किसी काम में मन न लगता था ।'

रामकिंकर भोजन के बाद सिगरेट के कश ले रहा था । मुंह से धुआं छोड़ते हुए बोला 'हमको भी कोई काम बताओ अमरनाथ । बेकार बैठा हुआ हूं बहुत दिन से ।'

अमरनाथ ने कहा 'तुम बेकार बैठे हुए हो यह सुनकर

मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ खो तो नहीं रहे हो ? मेरी हालत देखो, घाटा देते देते इज्जत आबरू पर आ बनी है।'

रामकिंकर अमरनाथ के मुंह की ओर गौर से देखते हुए बोला 'कितना घाटा दिया ?'

अमरनाथ क्षणभर चुप रहकर बोला 'अब तुमसे क्या छिपाऊं रामकिंकर, तुम कुछ गैर तो हो नहीं ? पास का सारा रुपया निकल गया और ऊपर से हो गया हजारों रुपये का कर्ज। क्या बताऊं तुमसे (धीरे से) यह रहने का मकान तक गिरवी हो गया है। अगर इधर कुछ रुपयों का प्रबन्ध न हुआ तो सिवाय भाग खड़े होने के या जान दे देने के और कोई चारा ही नहीं है।'

कहकर अमरनाथ ने एक गहरी सांस ली। रामकिंकर अवाक् होकर उसका मुंह देखने लगा।

अमरनाथ उदास चेहरे से बोले 'किन्तु यह जीवन तो संघर्ष का है भैया रामकिंकर। घबड़ाने से नौका पार न लगेगी। जब तक हाथ पैर चलें, संघर्ष किये जाओ।'

❀ ❀ ❀
पैदल चलकर लगभग नौ बजे रात के रामकिंकर घर पहुंचा। उसके मस्तिष्क में अब कुछ सोचने की शक्ति शेष न रही थी।

दरवाजे के पास ही उसे मोहल्ले के गोबर्धन मुनीम मिल गये। वे सेठ ध्यानचंद के यहां मुनीमी करते थे।

रामकिंकर के मकान के सामने ही उनका घर था ।

‘राम राम भैया’ मुनीमजी ने कहा ।

रामकिंकर ने हाथ जोड़ते हुए धीरे से कहा ‘नमस्ते महाराज ।’

वह घर के अन्दर जाने लगा । उसे रोककर मुनीमजी ने कहा ‘कुछ सुना भैया तुमने ?’

रामकिंकर बात करने के ‘मूड’ में न था । बोला ‘क्या बात है ?’

मुनीमजी ने कहा ‘हमारे सेठजी का काम फेल हो गया ।’

‘किसका ? सेठ ध्यानचंद का ?’ आश्चर्य से रामकिंकर ने पूछा ।

‘जी हां’ मुनीम मुस्कराते हुए बोले ।

‘अरे, वे तो बहुत बड़े आदमी थे । यह कैसे, क्या होमया ?’ रामकिंकर ने पूछा ।

किंचित मुस्कराकर मुनीमजी बोले ‘भैया, सभी जगह ढोल में पोल है । बरसों से गड़ढा बढ़ रहा था, लेकिन ठाठ-बाट में किसी तरह की कमी न थी । अंत में आज दुकानों पर बैंक का ताला लटक गया । अब तुमसे क्या बताऊँ भैया रामकिंकर, रुपये के चार आने भी तो लेन-दारों को न मिलेंगे । इन सेठ-साहूकारों से तो हम-तुम ही अच्छे हैं भैया । मेहनत-मजदूरी करके दाल रोटी तो खा लेते हैं ।’

कहकर मुनीमजी हंस पड़े। रामकिंकर पर एक
बोट और पड़ी। वह चुपचाप घर में जाकर लेट गया।

आज सदा की भांति वह अपनी दशा पर विचारों की
रेल न दौड़ा सका। उसकी आंखों के आगे आज घूम
रहे थे—पार्क वाला नौकर, इक्केवाला, अमरनाथ और
सेठ ध्यानचन्द।

संतोष के साथ उसके मुंह से निकला 'तब..तब
फ्या संघर्ष ही जीवन है ?'



उपदेशिका

(१)

धीरे धीरे लाला निरंजन लाल ईश्वर-भक्ति के रंग में रंगते चले गये । दुनिया नाच-तमाशा देखती, सिनेमा-नाटक का आनन्द उठाती, क्लब-जीवन का सुख लूटती, ताश-शतरंज खेलती तथा नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में भाग लेती, किन्तु लाला निरंजन लाल को इन सब बातों से कुछ वास्ता न था । वे समय व्यतीत करते तो हरि-भजन में, पैसा खर्च करते तो ठाकुरजी के श्रृंगार और भोग में, संगति का आनन्द उठाते—तो हरि-कीर्तन में और संगीत का रसास्वादन करते तो रास-मंडली में । अभी उनकी अवस्था भी अधिक न थी—गत क्वार वदी सप्तमी को उन्होंने चाली-सवां साल समाप्त किया था । लक्ष्मी ने उन्हें मान रखा था । अतएव अब व्यापार की ओर भी उनकी अभिरुचि न थी । “कहते, बहुत तो दिया है बांकेबिहारी ने । और फिर उसका नाम लेने वाले को दो मुट्ठी अन्न की क्या

प्रदर्शनी—

कमी ।”

किन्तु निरुपमा पति की इस ईश्वर-भक्ति को केवल ढकोसला मात्र समझती थी । वह समझती थी कि उनका सिर फिर गया ।

वह कहती ‘लीला व्याहने योग्य हो आयी है ।’

लाला निरंजनलाल लापरवाही से आकाश की ओर देखकर कह देते ‘सब वही करेगा बेड़ापार । चिन्ता न करो तुम ।’

निरुपमा कुढ़कर कहती ‘किन्तु क्या घर बैठे लड़का आ जायगा ?’

लालाजी कह देते ‘अगर बांकेबिहारी चाहेंगे तो घर बैठे ही आ जायगा ।’

निरुपमा बिगड़कर कहती ‘तुम्हारा दिमाग फिर गया है । घर का नाश किये डाल रहे हो ।’

निरंजनलाल कह देते ‘बिना उनकी मर्जी के पत्ता भी नहीं हिल सकता ।’

निरुपमा कह पड़ती ‘मालूम पड़ता है किसी ने तुम पर कुछ कर दिया है ।’

निरंजनलाल कहते ‘यह तुम्हारी अज्ञानता है निरुपमा । बांकेबिहारी तुम पर कृपा करें ।’

और उन्होंने आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़ दिये ।

निरुपमा पैर पटकती हुई एक ओर चली गयी ।

धीरे धीरे निरूपमा को विश्वास हो चला कि अवश्य किसी ने इन पर कुछ कर दिया है। एक दिन उसने अपने यहां के पुरोहित रामाधार पांडे को बुलाकर सब कुछ कह दिया।

चुटकी से निचले ओंठ के अंदर तमाखू रखकर दबाते हुए रामाधार पांडे बोले 'सो तो हो ही जाता है बहूजी। थोड़ी सी पूजा पाठ करने से सब ठीक हो जायगा।'।

धीरे से बहूजी बोलों—'लेकिन यह सब किसी को मालूम न हो पांडेजी ! जो कुछ खर्च पड़ेगा हम दे देंगे।'।

चलने का उपक्रम करते हुए पांडेजी ने कहा—'थोड़े रुपयों का खर्च है—सो भी विशेष नहीं।'।

बहूजी ने उन्हें दस रुपये का नोट पकड़ा दिया।

पांडेजी प्रसन्न होकर चले गये।

(२)

निरंजनलाल अपनी रफ्तार से चले जा रहे थे। अब तो दिन भर उनका व्यतीत होता पूजा-पाठ और हरिभजन में तथा संध्या और अधिकांश रात व्यतीत होती किसी न किसी के यहां हरि-कीर्तन में। उनकी मंडली में अधिकांश रहते थे पेंशन-याफ़ता सरकारी कर्मचारी, कुछ सेठ साहूकार तथा कतिपय वयस प्राप्त वकील-बैरिस्टर। सरकारी कर्मचारी जीवनभर भ्रष्टाचार से कमाये हुए पैसे से नयी हवेलियां खड़ी करके अब हरिकीर्तन की नौका पर चढ़कर स्वर्ग-प्राप्ति की प्रतीक्षा में थे; सेठ साहूकार अपनी

शोषण-नीति से जीवन भर गरीबों को चूसकर उनकी रुधिर-सिक्त अर्जित पूंजी से बड़ी बड़ी अट्टालिका खड़ी करके तथा चोर बाज़ार द्वारा जनता को भूखा और नंगा रखकर अब ईश्वर-भक्ति के प्रदर्शन से अपने जीते जागते पाप को छिपाने की चेष्टा में थे; वयस-प्राप्त वकील और बैरिस्टर जीवन भर दूध को पानी और पानी को दूध कर देने की कला में दक्ष होकर हजारों बेगुनाहों को लुटवाकर, फांसी दिलाकर अब समूची मक्खी निगल जाने की चेष्टा में 'एक तूही है प्रभु' का आश्रय लिये हुए थे। इन पुराने पापियों की सफल लीला पर मुग्ध होकर सामने रखी हुई लीलाधर की प्रतिमा भी मानो मुस्करा पड़ती थी।

लाला निरंजनलाल इसके अपवाद थे। वे जीवन के प्रथम प्रहर में सचेत हो गये थे। उनके जीवन के इतिहास के पृष्ठ साफ-सुथरे थे। भोले भाले निरंजनलाल किसी में अच्छाई बुराई देखने के आदी न थे। वे तो सभी में भगवान् का रूप देखने के भाव में मग्न रहते थे।

इन्हीं मित्रों की सलाह से उन्होंने ईश्वर-भक्तों, उपदेशकों तथा कर्म-कांडियों के बृहत् सम्मेलन का आयोजन किया। धन की कमी न थी अतएव बड़ी धूमधाम के साथ सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हो गया। स्वागत-समिति बना दी गयी, एक लम्बे चौड़े विस्तृत मैदान में पंडाल का निर्माण निश्चय किया गया तथा बाहर से सैकड़ों उपदेशक, बीसों संकीर्तन मंडलियां तथा पचासों गायक आमंत्रित किये गये। साधुओं

की मंडलियां भी बड़ी बड़ी दूर से आकर जम गयीं, पंथों के झंडे फहराने लगे तथा सारे नगर में ईश्वर-भक्ति का एक तूफान-सा लहराने लगा ।

लाला निरंजनलाल बड़े 'भगन' थे । उनका हृदय सम्मेलन की सफलता से बल्लियों उछल रहा था । बड़े-बड़े महात्माओं के दर्शन हुए, बड़ी ओजस्विनी वक्तृताएँ सुनने को मिलीं, हरि-कीर्तन में चिल्लाते चिल्लाते उनका गला पड़ गया तथा मैरुड़ों सावुओं के पैर छूते छूने उनका मन-मुकुर स्वच्छ-सा हो गया ।

निरुपमा से बोले 'आज का सम्मेलन बड़ा महत्वपूर्ण होगा' आना तुम भी । हजारों स्त्रियां रोज़ आनन्द प्राप्त करती हैं आकर ।

अपने मनोभावों को दबाकर हंसती हुई निरुपमा बोली 'कै बजे शुरू होगा कीर्तन ?'

निरंजनलाल बोले 'बस ८॥ बजे से शुरू होगा और एक बजे रात तक चलेगा । ८ तो बजही चुका है अब, तैयार हो जाओ चलने के लिए ।'

निरुपमा बोली 'अच्छी बात है । आप दूध पी लीजिये तो मैं तैयार हो जाऊं ।'

प्रसन्न होकर निरंजनलाल बोले 'हां-हां, मगर जल्दी करो ।'

निरुपमा दूध लेने के लिए रसोई घर में गयी, कटोरे में दूध उलटा और बड़े प्रयत्न के साथ चुपके से रामाधार

पांडे द्वारा दी गयी भस्म दूध में मिला दी ।

(३)

तांगे वाला बुरी तरह पिट रहा था और पीटने वाली थी लम्बी चौड़ी, हृष्ट-पुष्ट तथा गोरे चेहरे वाली एक स्त्री ।

तांगे वाला उसके छोटे से हंटर का वार बचाता हुआ कह रहा था 'बहूजी-बहूजी-मैं बेकसूर हूं । -मैंने -मैंने—'

और घड़ाघड़ घड़ाघड़ हंटर बरसाती हुई वह स्त्री कह रही थी 'तूने क्या समझकर मेरी देह का स्पर्श किया ? बदमाश — उल्लू के पट्ठे . . '

एक मीड़ लग गयी । लोगों ने बड़ी कठिनता से तांगे-वाले की जान बचायी । स्त्री अकड़ती हुई सम्मेलन के पंडाल की ओर चली गयी ।

लोगों ने कहा 'औरत हो तो ऐसी हो । दर्शन करने का जी चाहता है ।'

एक स्त्री ने कहा 'शायद सम्मेलन में आयी है बाहर से ।'

दूसरा बोला 'बड़ी बढ़िया उपदेशिका है । कल स्त्रियों की पवित्रता पर बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया था । इसका नाम लज्जावती देवी है ।'

तीसरा बोला 'तब फिर कौन उसके हाथ लगा सकता है ? तांगे वाले की तो मौत ही आयी थी ।'

सम्मेलन का दूसरे दिन का अधिवेशन बहुत ही अभूत-

पूर्व हुआ। लगभग १० बजे समाप्त हुआ। कीर्तन का प्रोग्राम १२ बजे तक का था।

बाहर से आये हुए लोगों के ठहरने के लिए कैम्पों का विशाल नगर-सा बस गया था।

लगभग ११॥ बजे रात को निरंजनलाल कैम्पों का चक्कर लगाने के लिए निकले।

एक कैम्प के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। यह काशी के सुप्रसिद्ध वाणीभूषणजी का डेरा था। अंदर से बातचीत की आवाज आ रही थी।

वाणीभूषणजी का स्वर सुनायी पड़ा, 'यार यहां आकर तो बड़े घाटे में रहे। कोरी खातिर ही खातिर रही। कुछ मिलता जुलता नहीं दिखायी पड़ रहा है।'

दूसरे महात्मा का स्वर सुनायी दिया, 'उससे तो यह अच्छा था कि हरिद्वार के सम्मेलन में चलते। सुना है वहां सम्मेलन की ओर से फी व्याख्यानदाता को ५०१) भेंट किये जायेंगे।'

हरि का भजन मन ही मन में करते हुए निरंजनलाल आगे बढ़ गये।

एक कैम्प से आवाज सुनायी पड़ी, 'आज तो साले दूध के लिए भी पूछने नहीं आये। भाँग की गर्मी से दिमाग की सारी नसें तनी जा रही हैं। बेड़ा गरक हो इन लोगों का।'

निरंजनलाल जल्दी जल्दी कदम बढ़ाकर आगे बढ़े।

कोने पर महिलाओं के कैम्प लगे थे । निरंजनलाल लज्जावती देवी से भेंट करना चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि वे कल उन्हें खाने के लिए अपने घर पर आमंत्रित करें । कदाचित् उनकी कृपा से निरुपमा के ज्ञान-चक्षु खुल जायें ।

एक ओर एकान्त में उनका डेरा था । दूर ही से खीमें के पास काफ़ी भीड़ उन्हें दिखलायी दी । वे जल्दी से उस ओर बढ़े ।

निकट पहुँचकर उन्होंने देखा कि बीस-पच्चीस व्यक्ति चुपचाप डेरे को चारों ओर से घेरे खड़े हैं ।

निरंजनलाल ने कुछ पूछना चाहा । अँगुली से उन्हें चुप रहने का इशारा करते हुए एक व्यक्ति उन्हें कुछ दूर ले गया और धीरे से बोला, 'चलकर चुप-चाप देवीजी की करतूत देख लीजिये ।'

निरंजनलाल भौचक्के से होकर बोले 'क्या बात है ?'

वह व्यक्ति उन्हें देवीजी के डेरे की ओर खींचकर ले जाते हुए बोला, 'अपनी आंखों से चलकर देख लीजिये न?'

कांपते पैरों से चलकर निरंजनलाल डेरे के पास पहुँचे । उन्हें देखकर भीड़ धीरे से एक ओर हट गयी । निरंजनलाल ने झाँककर अंदर देखा'

लज्जावती तथा सम्मेलन का एक स्वयंसेवक—आनंद किशोर—चिपटे पड़े हुए खुरटि भर रहे थे ।

निरंजनलाल ने 'प्रभु' का नाम लेकर दोनों हाथों से

अपनी आंखें बन्द कर लीं ।

तीसरे दिन फिर सम्मेलन में उन्हें किसी ने नहीं देखा ।

निरुपमा ने आकर कहा 'आज सम्मेलन में न जाइयेगा ।'

उदास से होकर निरंजनलाल ने कहा 'नहीं । अब उधर से जी उचाट हो गया है ।'

निरुपमा खिल गयी । रामाधार पांडे की भस्म काम कर गयी थी ।



रेडियो की मांग

विवाह के पूर्व ही जब हरिशंकर ने रेडियो की मांग लाला देशराज के सामने रख दी तभी सत्यवती के मुंह से निकल पड़ा था कि 'यह लक्षण तो अच्छा नहीं है।'

हंसकर देशराज ने कहा 'तो रेडियो क्या कोई बड़ी भारी चीज है। वह मांगता है तो दे दिया जायगा।'

गंभीर होकर सत्यवती ने कहा 'भारी चीज तो नहीं है, किन्तु यह मांगने की प्रथा तो ठीक नहीं है। इसी तरह लोग अंगुली पकड़कर पहुंचा पकड़ते हैं।'

देशराज चुप रहे। वे इसे साधारण-सी बात समझते थे। हरिशंकर की रेडियो की मांग स्वीकार कर ली गयी।

अब कौनसा रेडियो दिया जाय ? सत्यवती ने कहा— 'मैं दो-तीन सौ से ज्यादा रेडियो पर नहीं खर्च कर सकती।'

कुछ विचारकर देशराज ने कहा 'दो-तीन सौ में तो रेडियो आ जायगा। उन्हें तो रेडियो से मतलब ! कुछ हजार-पांच सौ का तो बेचारे तुमसे मांगते नहीं।'

—रेडियो की मांग

सत्यवती ने फिर कुछ न कहा। हरिशंकर को लिख दिया गया कि रेडियो दे दिया जायगा।

चार पांच दिन में हरिशंकर का पत्र आया। उसने लिखा था कि 'एक अच्छा-सा रेडियो यहां २५० रुपये का मिल रहा है। कहिये तो खरीद लूं?''

कुछ सोच-विचारकर लिख दिया गया कि 'अच्छी बात है। खरीद लीजिये, यहां आने पर दाम दे दिये जायेंगे।'

दूसरे सप्ताह हरिशंकर का फिर पत्र आया। उसमें लिखा था कि 'उस रेडियो के दाम बढ़ गये हैं। अब वह उसके दाम ३२५ रुपये मांगता है। एक और रेडियो है जो पहिले वाले रेडियो से बहुत ही अच्छा है। उसका दाम कुल ३८५ रुपये है। अगर कहिये तो यही रेडियो ले लूं।'

झुंझलाकर सत्यवती ने कहा 'मैं कहती थी न कि अंगुली पकड़कर लोग पहुंचा पकड़ते हैं? एकदम २५० से ३८५ रुपये हो गये।'

देशराज कुछ सोचकर बोले 'तो फिर ढाई-तीन सौ का रेडियो यहीं से खरीद देंगे। उन्हें भी लिख दो।'

इस प्रकार का उत्तर पाकर हरिशंकर ने लिख दिया— 'मैंने रेडियो लेने का इरादा छोड़ दिया है। आप मेरे लिए रेडियो न खरीदें।'

इसका कोई उत्तर हरिशंकर को न दिया गया।

सत्यवती ने कहा 'यह बात तो ठीक नहीं है। मैं उन्हें रेडियो दूंगी—मगर अपनी हैसियत को देखकर ही दूंगी। यह तो ज्यादाती की बात है कि कोई चीज मांगी जाय और उस पर यह हठ कि इतने ही दाम की लूंगा। यह कहाँ का क्रायदा है ?'

(२)

हरिप्रसाद ने कहा 'रेडियो का क्या हुआ ?'

हरिशंकर ने कहा 'वे लोग तो सस्ता मद्रा रेडियो भेड़ देना चाहते हैं। मैं लूंगा तो बढ़िया लूंगा नहीं तो——'
विधानचंद बोल उठे 'लेकिन वहाँ से क्या जबाब आया ?'

हरिशंकर ने कहा 'उन्होंने लिखा है कि हम यहीं से खरीदकर दे देंगे।'

हरिप्रसाद बोल उठे 'यह तो कुछ भी न रहा यार !
ऐसी तरकीब लड़ाओ कि बढ़िया रेडियो हाथ लगे।'

सन्तराम अब तक चुप बैठा था, बोला 'मगर यह बात तो कुछ बेतुकी-सी है। पहिली बात तो यह है कि मांगना ही एक बुरी बात है। और अगर मांगा है तो जैसा भी वे दें ले लेना चाहिए।'

हरिप्रसाद बोल उठा 'क्यों ले लें घटिया-सी चीज ?
बढ़िया ही चीज लें और नहीं तो फिर लेने से इनकार कर दें।'

सन्तराम ने कहा 'और अगर उनको ऐसी हैसियत न

—रेडियो की मांग

हो? वे सिर्फ अगर आपकी बात का ही मान रखना चाहते हों तो?’

हरिप्रसाद ने कहा ‘तो फिर उन्हें साफ साफ कह देना चाहिए कि हमारी हैसियत नहीं है।’

सन्तराम ने किंचित आवेश में आकर कहा ‘यह तो तुम बहुत अच्छी बात कह रहे हो हरिप्रसाद। तुम किसी के यहां विवाह करने जा रहे हो या उसकी इज्जत लेने?’

हरिप्रसाद ने सिर हिलाते हुए कहा ‘मैं ऐसा धर्मात्मा नहीं हूं जो इस प्रकार की बातें सोचता फिरूं। खरी बात कहता हूं।’

विधानचंद बोल उठे ‘ठीक कहते हो। देना हो तो दें, नहीं तो साफ इनकार कर दें।’

हरिशंकर ने कहा ‘तभी तो मैंने लिख दिया है कि मुझे रेडियो नहीं चाहिए।’

ये वे ही मित्र थे जिन्होंने देशराज से हरिशंकर के स्वभाव की बड़ी तारीफ की थी। उन्हें गऊ के समान सीधा बतलाया था।

(३)

विवाह के दहेज में ‘फिलको’ रेडियो देखकर हरिशंकर चुप रह गये। विवाह भर मुंह बनाये रहे।

रेडियो की बात को लेकर हरिशंकर ने ससुराल वालों से दुश्मनी-सी ठान ली। न कभी ससुराल जाते और न अधिक पत्र-व्यवहार ही करते।

शीला से कहते 'मुझे औरतों का माँ के घर बहुत जाना पसंद नहीं है।'

शीला सीधी सादी स्त्री थी। पति की व्यर्थ की झिड़कियाँ खाकर भी चुप रहती।

उधर सत्यवती ने पति से कहा 'इस हरिशंकर को तो लोग बहुत सीधा-सादा और सज्जन कहा करते थे। विवाह होते ही रंगत खुल गयी।'

देशराज ने धीरे से कहा 'जब तक किसी के निकट न आओ, उसके स्वभाव का पता कैसे चल सकता है? और अपना स्वभाव बुरा बनाकर वह व्यक्ति अपना ही नुकसान करता है। दूसरे का क्या बना-बिगाड़ सकता है?'

सत्यवती ने कहा 'शीला बहुत सीधी सादी लड़की है इसलिए चुप रहती है। उसकी जगह यदि लीला (शीला की छोटी बहिन) होती तो उन्हें आटे-दाल का भाव मालूम पड़ जाता।'

देशराज ने हंसकर कहा 'इच्छा तो हरिशंकर लीला के साथ ही विवाह की रखते थे, लेकिन कुछ कह न सके।'

लीला पास ही बैठी हुई थी। वह ज़रा स्वभाव की उद्धत तथा तेज़ थी। अट बोल उठी 'ज़रा मुंह धो रखें। मैं तो दो ही दिन में ठीक कर देती और सबको 'राम राम' कहकर लौट आती। लीला से ब्याह करेंगे———'

सत्यवती बीच ही में उसे डपटती हुई बोली 'चुप रह। तू बहुत बात करने लगी है लीला !'

लीला खिसियानी-सी होकर बोली 'मैं तो सच बात कहती हूँ। वे सबसे कहते फिरते हैं कि मैं तो लीला से ब्याह करना चाहता था—मगर लीला तो उनसे ब्याह नहीं करना चाहती। लीला से ब्याह करने के लिए दिमाग में बल चाहिए।'

उसे बहुत बात करते देख सत्यवती बिगड़कर बोली 'अच्छा, चुप तो रह।'

लीला चुप हो गयी। देशराज मुस्करा दिये।

(४)

हरिशंकर के भी एक विवाह योग्य बहिन थी। बहुत दौड़-धूप के बाद लखनऊ में एक लड़का मिला।

लड़के के पिता ने कहा 'शादी में आपको मोटर देनी पड़ेगी।'

बहुत कुछ सोच विचार के बाद हरिशंकर ने कहा 'अच्छी बात है।'

सौदा पटता देखकर लड़के के पिता बोले 'मोटर अच्छी-सी होनी चाहिए।'

हरिशंकर धीरे से बोले 'बहुत अच्छा।'

घर लौटकर हरिशंकर ने शीला से कहा 'मोटर मांगते हैं वे लोग।'

शीला बोली 'मोटर देने की हमारी हैसियत नहीं है। हम मोटर नहीं दे सकते।'

हरिशंकर एक लम्बी-सी सांस लेकर बोले 'मगर यह

कहूं कैसे उनसे ? इज्जत का मामला है ।’

शीला बोल उठी ‘तो क्या वह हमारी इज्जत लेना चाहते हैं । उन्हें इस प्रकार कुछ मांगते हुए लज्जा भी नहीं आती ।’

हरिशंकर चुप रहे ।

मित्रों से सलाह ली तो हरिप्रसाद ने कहा ‘सस्ती-मही मोटर लेकर भेड़ देना । उन्हें मोटर ही तो चाहिए ।’

हरिशंकर ने कहा ‘मगर वे तो बढ़िया मोटर चाहते हैं ।’

विधानचंद बोल उठे ‘यह भी कोई बात है ? जैसी हमारी हैसियत होगी, वैसी देंगे ।’

हरिप्रसाद ने कहा ‘इससे तो यह साफ है कि वे मोटर के बहाने हमारी इज्जत लेना चाहते हैं ।’

सन्तराम मौका पाकर बोला ‘तो उनसे साफ कह दो न कि मोटर देने की हमारी हैसियत नहीं है ।’

हरिशंकर उदास होकर बोले ‘मगर बिना अच्छी—मी मोटर लिये वे विवाह करने को राजी नहीं हैं ।’

कुछ सोचकर हरिप्रसाद ने कहा ‘अच्छा, तुम मत खबड़ाओ हरिशंकर । मैं प्रबंध कर दूंगा ।’

(५)

बारात जनरासे में पहुंचते ही लड़के के पिता ने हरिशंकर को बुला भेजा ।

हरिशंकर ने आकर कहा ‘कहिये, क्या आज्ञा है ?’

—रेडियो की मांग

लड़के के पिता ने कहा 'मोटर खरीद ली आपने ?'

धीरे से हरिशंकर ने कहा 'जी हां ।'

उन्होंने कहा 'मैं उसे देखना चाहता हूं ।'

हरिशंकर ने हरिप्रसाद को बुलाकर कहा 'मोटर यहाँ मंगवा लेना भाई ।'

पुरानी, खड़खड़ आवाज़ करती हुई, फटे हुड वाले फोर्ड को देखकर लड़के के पिता आपे से बाहर हो गये । बोले 'यही मोटर देना चाहते हैं आप हमको ?'

हरिशंकर भयभीत होकर बोला 'जी हां, इसकी मशीन बहुत बढ़िया है ।'

क्रोध को दबाते हुए उन्होंने कहा 'मैं आपसे पूछना हूँ कि आप बढ़िया मोटर दे सकते हैं या नहीं ?'

हरिप्रसाद ने हाथ जोड़ते हुए कहा 'हम अपनी हैसियत के मुताबिक आपको मोटर दे रहे हैं ।'

ताव खाकर लड़के के पिता ने कहा 'आप कौन हैं ?'

हरिशंकर ने कहा 'जी ई ई—ये मेरे दोस्त हैं मि० हरिप्रसाद ।'

लड़के के पिता ने कहा 'आप बीच में बोलने वाले कौन हैं ? मैं तो बाबू हरिशंकर से बात कर रहा हूँ ।'

हरिप्रसाद की सिटी-पिट्टी भूल गयी । हरिशंकर ने कहा 'आशा है आप इस मोटर को स्वीकार कर लेंगे ।'

लड़के के पिता ने कहा 'आप अच्छी मोटर नहीं दे सकेंगे ।'

हरिशंकर के मुह से निकला 'नहीं' ।

खड़े होकर लड़के के पिता ने कहा तो फिर साफ तौर से समझ लें कि यह ब्याह भी नहीं हो सकता । हमको आपकी हैसियत से कुछ मतलब नहीं है, मुझे तो अपनी और अपने लड़के की हैसियत देखनी है ।'

हरिशंकर चुपचाप खड़े हुए थे ।

लड़के के पिता ने नौकरों को बुलाकर कहा 'असबाब बांधो जाकर' । बारात आज ही लौट जायगी । हम अपनी बराबर की हैसियत वाले के यहां ब्याह करेंगे सुरेश का । जल्दी करो ।'

और उमी दिन शाम की बारात लौट गयी ।

अकबर की कब्र

सेंट जॉन्स कालेज, बिलोचपुरा का प्रसिद्ध पागलखाना तथा देवता बाग होती हुई अब हमारी मोटर-बस सिकन्दरे की ओर बढ़ी चली जा रही थी। सिकन्दरा आगरा नगर से लगभग ७ मील दूर है; यहां भारत के सुप्रसिद्ध मुगल-सम्राट् अकबर की कब्र है। सम्राट् अकबर.....

हमारे विचारों की मोटर-बस भी इतिहास के पृष्ठों पर दौड़ने लगी—

×

×

×

चिकित्सक ने गंभीर होकर कहा 'मेरी यह औषधि सम्राट् के लिए अवश्य लाभकारी सिद्ध होगी।'

सुनहरे पलंग पर लेटे हुए जर्जर और रुग्ण सम्राट् ने एक बार चिकित्सक की ओर भेदभरी दृष्टि से देखा और फिर आंखें मूंद लीं।

सामन्त, दरबारी, हितैषी तथा सम्बन्धी कक्ष में चुपचाप बैठे हुए देश में कला, साहित्य, शौर्य, प्रतिष्ठा तथा गौरव को आकाश तक ले जाने वाले प्रतापी अकबर के अस्त को देख रहे थे।

प्रदर्शनी—

सहसा सम्राट् ने धीरे से नेत्रों को खोला और पुतलियों को एक बार चारों ओर घुमाकर क्षीण-स्वर में कहा 'सलीम !'

महाराज मानसिंह की चिन्ता बढ़ गयी; वे समझते थे कि कदाचित् सम्राट् अब सलीम को भूल चुके हैं । वे बोले 'जहांपनाह, सलीम की कुछ खबर अभी तक नहीं आयी । क्या शहजादे खुर्रम को बुलवाऊं ?'

सम्राट् मौन पड़े रहे ।

चिकित्सक ने दवा को प्याले में उड़ेलते हुए कहा 'जहांपनाह, ज़रा तकलीफ करें ।'

अकबर ने क्षण भर तक चुप रहकर कहा 'क्या रात भर के लिए आप मुझे मुआफ़ न फरमायेंगे साहब ?'

चिकित्सक ने प्याले को पास ही रखी हुई संगमरमर की खुशनुमा चौकी पर रखते हुए कहा 'जहांपनाह की मर्जी ।'

अकबर ने कहा 'सलीम की ज़रूरत है मुझे महाराज मानसिंह ! आखिर बाग़ी को दंड मिलना ही चाहिए ।'

महाराज मानसिंह का हृदय प्रसन्न हो उठा । अमि-वादन करते हुए बोले 'जहांपनाह की स्वाहिश ज़रूर पूरी होगी ।'

सम्राट् का चेहरा शोकांकित-सा हो उठा ।

(२),

—अकबर की क़ब्र

हम सिकन्दरा के निकट पहुँच रहे थे । मि० कपूर ने कहा 'हम बिलोचपुरे से काफी दूर निकल आये, अब —'

बात काटकर राजरानी बोल उठी 'बिलोचपुरे का क्या ऐतिहासिक महत्व है भाई साहब ?'

बिलोचपुरा————

×

×

×

सलीम की विशाल सेना ने यार खां के सेनापतित्व में बिलोचपुरे में अपना पड़ाव डाल दिया ।

यार खां ने कहा 'इस जगह से हम आगरे पर आसानी से हमला कर सकते हैं ।'

और आ पहुँचा सम्राट् अकबर का भेजा हुआ राज-दूत कासिम खां ।

सलीम की आज्ञा से वह लाकर हाजिर किया गया ।

कासिम खां ने लम्बा आदाब बजाते हुए कहा 'शाह-जादे की खिदमत में जहांपनाह के हुक्म से हाजिर हुआ हूँ । जहांपनाह आखिरी वक्त हुआ को देखना चाहते हैं ।'

यार खां ने सिर हिलाते हुए कहा 'जहांपनाह आखिरी वक्त शाहजादे को देखना चाहते हैं या उसे गिरफ्तार करके महाराज मानसिंह के हवाले कर देना चाहते हैं खां साहब ?'

सलीम चुप था । कासिम खां ने फिर अभिवादन करते हुए कहा 'जहांपनाह की हालत अच्छी नहीं है । वे बार बार शाहजादे का नाम ले लेकर चौंक पड़ते हैं ।'

यार खां ने जरा स्फुट-स्वर से कहा 'लौट जाओ

कासिम खां, जहांपनाह से कह देना कि अब शाहजादा सलीम उनके और मानसिंह के षड्यन्त्र में नहीं फंस सकता । अगर खुदा ने चाहा तो दो चार दिन में ही हम आकर उन्हें तलबारों से सलाम करेंगे । अब आप जा सकते हैं खां साहब ।

कासिम खां ने झुककर आदाब बजाया और धीरे से लौट चला ।

सहसा सलीम बोल उठा 'ठहरो खां साहब ! शाहजादा सलीम मानसिंह से नहीं डरता । चलो, मैं अब्बा-जान के पास चलता हूं ।'

सलीम ने अपने को सुसज्जित किया अस्त्र-शस्त्रों से और कासिम खां के साथ चल दिया ।

(३)

जोरों की वर्षा होने लगी थी—मि० कपूर ने कहा 'अब हम सिकन्दरे के निकट हैं । इस खूबसूरत आलीशान इमारत में हिन्दुस्तान के बादशाह अकबर का शव—
—इतिहास के पृष्ठ—विचारों की दौड़ जारी थी—

×

×

×

सलीम-अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित योद्धा बना हुआ—सम्राट् अकबर के विशाल कक्ष के द्वार पर खड़ा हुआ था ।

उपस्थित सभासद और सामंत प्रतिष्ठा के लिए उठने को उद्यत हुए किन्तु महाराज मानसिंह की त्योरियां देख-

—अकबर की कब्र

कर ज्यों के त्यों बैठे ही रह गये।

सलीम की दृष्टि पलंग की ओर गयी। जिस पिता के मरने की प्रतीक्षा करते करते उसने ऊबकर बगावत का झंडा खड़ा किया था उसे आज निश्चेष्ट, निर्बल एवं अन्तिम अवस्था में देखकर उसका हृदय रोने-सा लगा। उसके नेत्रों में जल आ गया।

पिता ने भी देखा—सामने खड़ा है सलीम। यह क्या? सदा रंगरेलियों में मस्त रहने वाला कौमल, भावुक और आराम-पसंद सलीम, आज योद्धा के वेश में! खूब!!

सम्राट् के चेहरे पर मुस्कान-सी दौड़ गयी। ममता को दबाकर वह धीरे से बोला 'क्या मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए भारत-सम्राट् अकबर से युद्ध करने आये हो सलीम?'

सलीम ने क्षण भर कुछ सोचा और फिर सारे अस्त्र-शस्त्रों को उतारकर एक ओर फेंक दिया। उसने महाराज मानसिंह की ओर घृणापूर्ण दृष्टि से देखा।

तो फिर क्या वही उसके और उसके पिता की ममता के बीच दीवार-सा बना खड़ा हुआ है?

सलीम चुपचाप पिता के पास आकर पलंग पर बैठ गया। वह नीचा सिर किये हुए बैठा हुआ था।

सन्नाटा था। महाराज मानसिंह का चेहरा पीला-सा पड़ रहा था।

अकबर ने कांपते हुए बायें हाथ से सलीम का दाहिना कान पकड़ा तथा दाहिने हाथ से उसके बायें गाल पर एक

हल ही-सी चंपत लगाते हुए कहा 'क्यों बे शेखू ! तू इतना बदमाश हो गया है ?'

सलीम की आंखों से आंसू आ चले थे । वह नीचा सिर किये हुए ममता में बह-सा रहा था ।

अकबर ने धीरे से सिरहाने रखा हुआ अपना ताज उठाया और सलीम के सिर पर रख दिया ।

सामन्तों की तलवारें खनखना उठीं; सभासदों के दोनों हाथ अभिवादन के लिए ऊपर उठ गये ।

'मुगल-सम्राट् की जय हो' सामन्तों ने घोष किया तलवारों से नये सम्राट् के अभिवादन की क्रिया पूरी हो गयी, सलीम ने खड़े होकर पिता का राज्याचित अभिवादन किया ।

अकबर ने कहा 'सलीम, हिन्दुस्तान की हुकूमत का बोझ मामूली बोझ नहीं है । रैय्यत की खिदमत ही काम-याबी का बायस है । अल्लाह तुम्हारी मदद करें ।'

और सम्राट् शक्ति-हीन-सा विस्तर पर गिर गया । सलीम ने पिता के हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए कहा 'मेरे लिए क्या हुक्म होता है अब्बा जान ?'

श्रान्त अकबर कुछ देर तक चुप रहा, फिर बोला 'दुनिया सादगी पर रीझती है सलीम । यदि हो सके तो आगरे से बहुत दूर —कहीं जमना के किनारे—पेड़ों और पत्तियों से घिरी हुई मेरी सीधी-सादी कब्र बनवा देना । याद रखना सलीम, उस पर किसी प्रकार की छत न हो जिस

पर लोगों की निगाह न पड़े, उसी एक इंट की कब्र के नीचे ही अकबर की आत्मा सुख की सांस ले सकेगी। अकबर के सीने में जीवन भर मोम की सी लोच रही है, वह संगमरमर के बोझ को कभी न सह सकेगा।'

सलीम चुपचाप सुन रहा था। शक्ति आते ही अकबर उठकर बैठ गया। सलीम ने पीठ के पीछे अपने हाथ लगा दिये।

अकबर ने चिकित्सक की ओर भेदभरी दृष्टि से देखा और हल्की-सी मुस्कान के साथ कहा 'लाइये खां साहब, अब आपकी दवा पीने का वक्त आ गया है।'

चिकित्सक कांप उठा। अकबर मुस्कराता हुआ बोला 'डरने की कोई बात नहीं है खां साहब। लाइये, प्याला बढ़ाइये।

हकीम साहब ने गिड़गिड़ाते हुए कहा 'नहीं जहांपनाह, मेरा कुसूर मुआफ हो।' मैं यह दवा आपको नहीं पिला सकता-----'

अकबर सिर हिलाते हुए झट से बोल उठा 'क्योंकि इसमें वह कातिल जहर मिला हुआ है जो मौत के पहिले ही सम्राट् को.....'

सलीम ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से हकीम साहब को देखा और कहा 'आपकी यह मजाल !'

अकबर ने सलीम की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा 'गुस्सा करने की बात नहीं है सलीम। मैंने उसी

वक्त इस बात को समझ लिया और आंखों से देख लिया था जिस वक्त यह कातिल जहर खां साहंब की जेब से निकलकर इस प्याले में आया था। खैर.....जरा प्याला इधर बढ़ाना सलीम।'

सलीम ने धीरे से प्याला सम्राट की ओर बढ़ा दिया।

शौर से प्याले की ओर देखते हुए सम्राट ने कहा 'हकीम बेगुनाह है सलीम। अकबर की लम्बी उम्र ही ने आज यह नौबत ला दी है। आज मैं खुश हूं कि अल्लाह ने मेरी खाहिश पूरी कर दी है। जिसकी चीज़ थी उसी को सौंपकर मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। सलीम तुम पर खुदा का साया रहे। तुम्हारे द्वारा दिया हुआ यह प्याला आबेहयात-सी लज्जत रखता है।'

और अकबर ने एकाएक वह छोटा-सा प्याला होठों से लगाकर खाली कर दिया।

सलीम चिल्लाया 'यह क्या किया अब्बाजान !'

अकबर के चेहरे पर सन्तोष की मुस्कान थी।

(४)

सिकन्दरे पर जाकर हमारी मोटर-बस रुक गयी। पानी मूसलाधार गिर रहा था। मेरी विचारधारा में भी अर्द्ध-विराम आ लगा।

मि० कपूर ने कहा 'यही सिकन्दरा है। इसी में उस प्रतापी सम्राट अकबर का शव पड़ा हुआ है।'

मैं जैसे नींद से चौंक पड़ा। बोला 'अकबर का शव

इसके अंदर नहीं है मि० कपूर ।’

‘क्या कहा ?’ कुछ चौंककर कपूर बोले ।

मैंने धीरे से कहना शुरू किया, ‘अकबर के आदेश के विरुद्ध सलीम ने पिता की यादगार में इतना बड़ा मकबरा बनाकर सिकन्दरा में खड़ा किया । संगमरमर के पत्थरों की कारीगरी से दबा हुआ अकबर का शरीर बहुत दिनों तक इस मकबरे में आराम न कर सका ।’

‘क्यों !’ कपूर ने पूछा ।

‘इतिहास बतलाता है कि जाटों ने जब आगरे पर हमला किया तो उन्होंने सिकन्दरे में बनी हुई अकबर की कब्र को खोद डाला और क्रोध से अंधे होकर अकबर के शव को वहां-से निकालकर यमुना में प्रवाहित कर दिया । यह ऐतिहासिक सत्य है ; सिकन्दरे के मकबरे में अकबर का शव नहीं है, केवल इमारत ही इमारत है ।’

वर्षा रुक गयी । मि० कपूर ने कहा ‘पानी बंद हो गया है । क्या इमारत के अन्दर चला जाय ?’

मैं बोल उठा ‘अब लौट चलें । थोड़ी देर में फिर पानी आने वाला है ।’

कपूर के हृदय में भी अब अधिक उत्साह न था ।

मोटर-बस आगरे की ओर मुड़ गयी ।

विचारों की ट्रेन भी इतिहास के पृष्ठों से हटकर—
यह देवता बाग ।

यह पागल खाना———

वह रहा बिलोचपुरा ।

आगरा—अकबर—सिकन्दरा ।



उसका भविष्य !

(१)

कुमार एक गहरी-सी सांस लेकर बोला 'तुम जानते हो विजय, कि मैं बाल्यकाल ही से कितना शिष्ट, शर्मीला और सहनशील रहा हूँ । मेरी इस 'वर्त्तमान दशा का कोई विशेष कारण ही हो सकता है ।'

विजय ने उसकी ओर गौर से देखते हुए कहा 'इस प्रकार आज ८ वर्ष बाद तुम्हें देखकर मैं तो स्तंभित रह गया हूँ । तुम्हारे पास क्या नहीं था कुमार ! धन-वैभव, ऐश्वर्य, सुन्दरता और स्वास्थ्य—सभी कुछ तो ।'

कुमार ने क्षण भर चुप रहकर कहा 'क्या पूछते हो विजय, यह एक वेदनापूर्ण कहानी है । तुम्हें मालूम हो कि पिताजी की पटने में भी एक कोठी है जहां लोहे का व्यापार होता है । बी. ए. पास करने के बाद मेरा और तुम्हारा साथ छूटा ; तुमने लखनऊ के कालेज में प्रोफेसरी का पद पाकर इलाहाबाद छोड़ दिया और मैं प्रयाग से अपने

प्रदर्शनी—

घर कानपुर पहुंचा। मैं नौकरी न करना चाहता था अतएव पिताजी ने पटने जाकर वहां के व्यापार की बागडोर हाथ में लेने की सलाह दी।

मैं प्रसन्नता पूर्वक पटना पहुंचा तथा वहां के व्यापार की बागडोर अपने हाथ में ले ली। एकजीबीशन रोड पर मुझे एक सज्जन ने अपना आधा बंगला किराये पर दे दिया। बस यहीं से मेरे दुर्भाग्य की कहानी प्रारम्भ होती है।

वे सज्जन भी पटने के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे। थोड़े ही दिनों में हम लोग घुल-मिल गये। मैं अकेला ही रहता था। साथ में एक रसोइया तथा एक नौकर था। प्रायः मैं रात्रि के वक्त उन्हीं के यहां भोजन भी कर लेता था। उनके घर में मैं स्वतन्त्रतापूर्वक आता जाता था तथा मुझसे उनके घर में कोई किसी प्रकार का परदा न था।

उन सज्जन के एक बहिन थी—फूल-सी सुकुमार, चम्पा से भी सुन्दर वर्णवाली, मृदुभाषी एवं नील कमल-से सुनेत्रों से युक्त। तुम्हें मालूम ही है विजय कि मैं कालेज-जीवन में ही कितना स्त्रियों से दूर रहने वाला था। अपने शर्मिले स्वभाव के कारण साथ में पढ़ने वाली लड़कियों से भी मेरा कभी सम्पर्क नहीं हुआ। किन्तु यह लड़की सदैव अवांछित स्नेह दिखलाती, मुझसे आवश्यकता से अधिक बात करती तथा मेरे निकट आना चाहती। बहुत दिनों तक मैं उससे दूर ही दूर रहने की चेष्टा करता रहा, किन्तु तुम समझ सकते हो विजय कि किसी पुरुष कहलाने वाले जीव के लिए यह

कितना असम्भव है ।

मैं दोपहर को ३-४ घंटे बंगले ही में आराम करता था । वह बिना रोक टोक आजाती, कभी आल्मारी से पुस्तकें निकालकर पढ़ने लगती, कभी मेरे पास कुर्सी पर बैठकर बातचीत करने लगती और कभी बार बार आती और हाव भाव के साथ लौट-लौटकर चली जाती । एक तो १७-१८ वर्ष का वय-यौवन फटा-सा पड़ता था उसके और फिर शिष्ट, सुन्दर और हाव-भावपूर्ण । मैं कहां तक चुप रहता !

परिणाम यह हुआ कि मैं भी आगे बढ़ने लगा । दोपहर के सन्नाटे में जब सब लोग सो जाते तो स्वर्ग की परी-सी बनकर वह चुपचाप मेरे पास आजाती ।

(२)

विजय ने कुतूहल के साथ पूछा 'और घर के लोग ?'

कुमार ने धीरे से कहना प्रारम्भ किया 'घर के लोग इस प्रकार की बातों पर बंधन रखना आधुनिक सभ्यता के कदाचित् विरुद्ध समझते थे । वह अपने भाइयों, माता और भाभियों के सामने मुझसे स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत करती किन्तु उन्हें किसी भी प्रकार की आपत्ति न होती । मैंने सैकड़ों रुपये के उपहार ला-लाकर उसे दे दिये किन्तु किसी ने कभी आपत्ति न की । तुमसे क्या छिपाऊं विजय, एक दिन हम दोनों का बांध खुल गया था और हममें किसी भी प्रकार का अब अंतर न रह गया था । मैं उसका हो गया

बीर वह मेरी।

विजय आश्चर्य से पूछ बैठा 'किन्तु घर वालों से सब कुछ छिपा ही रहा कुमार ?'

कुमार कुछ सोचकर बोला 'यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, किन्तु हम दोनों साथ साथ घूमने जाते, सिनेमा जाते और भोजन भी कर लेते थे किन्तु उन लोगों की ओर से कभी कोई आपत्ति नहीं हुई। अस्तु—

एक दिन उसके बड़े भाई, जो घर के बड़े थे तथा जिन्होंने मुझे बंगला किराये पर दिया था, मेरे पास आकर बैठ गये। मैं पूछ बैठा 'आज कोठी नहीं गये भाई साहब।'

वे ज़रा गम्भीर होकर बोले 'आज तुमसे कुछ बातें करना थीं कुमार बाबू।'

मैं पहिले तो कुछ घबड़ाया, किन्तु बाद में बोल उठा, 'कहिये।'

वे क्षण भर चुप रहकर बोले 'तुम्हें कदाचित् नहीं मालूम है कुमार बाबू कि इधर मेरे व्यापार में बराबर घाटा ही चला आ रहा है। तुम अपने ही घर के हो, तुमसे क्या छिपाना? यदि मैं इधर सप्ताह के अन्दर दस हजार रुपये का प्रबन्ध न कर सका तो निश्चित रूप से हमको, यहां से काला मुंह करके भागना पड़ेगा।'

कहकर उन्होंने एक निश्वास ली और चुप हो गये।

मैं धीरे से बोला 'आप घबड़ायें नहीं। मैं जो कुछ भी सेवा आपकी कर सकता हूं, करूंगा।'

‘उन्हें कुछ संतोष-सा हुआ । बोले ‘अभी चार दिन की जान पहिचान ही में आपसे कुछ कहते हुए.....’

बात काटकर मैं बोल पड़ा ‘इसकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं कल आपके लिए रुपयों का प्रबन्ध कर दूंगा ।’ वे प्रसन्न होकर चले गये ।

मैंने दूसरे दिन उन्हें दस हजार रुपये दे दिये ।

विजय आश्चर्य के साथ बोला ‘जरा-सी जान पहिचान में तुमने इतने रुपये दे दिये कुमार ?’

कुमार चुप रहा ।

विजय ने पूछा ‘फिर रुपये वापिस मिले ?’

कुमार कहने लगा ‘इसके बाद हमारी घनिष्ठता और बढ़ने लगी । वह जब तक मैं चाहता, मेरे ही पास रहती । किन्तु इस घटना के बाद वह कुछ उदास-सी रहने लगी ।

एक दिन मैंने उससे अपने विवाह का प्रस्ताव कर दिया, वह चुप रह गयी ।

मैं गौर से उसका मुंह देखते हुए बोला ‘क्या मेरा प्रस्ताव पसन्द नहीं है ।’

वह बोली ‘मैं कुछ नहीं जानती ।’

उस दिन फिर मैंने कुछ न कहा । वह चली गयी ।

(३)

विजय ने कहा ‘जरा जल्दी जल्दी कहो कुमार ! तुम्हारी कथा बड़ी मनोरंजक होती जा रही है ।’

कुमार बोला ‘आठ दस दिन बाद उसके भाई ने आकर

कहा 'हम लोग ५-६ दिन के लिए प्रयाग जा रहे हैं कुमार बाबू। घर अकेला ही रहेगा, ज़रा ख्याल रखियेगा।'।

मैं बोड उठा 'हा-हां, ज़रूर।'।

वे क्षण भर रुककर बोले 'चलिये, आप भी साथ चलकर घूम आइये।'।

मैं हाथ जोड़ते हुए बोला 'बड़ी कृपा है आपकी। मैं तो न जा सकूंगा।'।

वे चले गये। चलती वेर मेरी उससे भेंट न हो सकी। अब मैं यह अनुभव करने लगा कि वास्तव में उसके साथ ही साथ मेरे जीवन का सार, मेरे हृदय का संतोष तथा मेरी उमंगों का संसार भी चला गया। दिन-रात उसी के चिन्तन में व्यतीत होता तथा किसी काम में जी न लगता। मैं स्पष्ट रूप से समझ गया कि मैं प्रेम का शिकार हो गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे आठ दिन के स्थान पर आठ महीने बीत गये किन्तु वे लोग लौटकर न आये। मकान मालिक ने भी कई महीने तक प्रतीक्षा की, फिर अंत में ताला तोड़कर उस पर अधिकार कर लिया। सामान भी कुछ न निकला। कदाचित् वे लोग न लोटने ही का इरादा करके गये थे।

तुम कहोगे विजय कि इस प्रकार दस हजार रुपया ठग कर ले जाने पर तुम्हें बड़ा क्रोध आया होगा, किन्तु मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं कि मुझे तो अपनी उन स्वप्नों की

रानी के सामने एक क्षण भी रुपयों की याद न आयी । मुझे तो धीरे धीरे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब उसके बिना मेरा जीवन ही व्यर्थ है । हां, कभी कभी मुझे उसकी निष्ठुरता पर क्रोध तथा आश्चर्य उत्पन्न होता था । यदि मेरी तरह उसका भी प्रेम मुझ पर होता तो क्या वह मेरे साथ इस प्रकार का व्यवहार करती ? इससे तो इस षड्यंत्र में उसका हाथ अवश्य मालूम पड़ता था । किन्तु मैं क्या बताऊं विजय, मेरी क्या हालत हो गयी ।’

विजय बोल उठा ‘और तब से तुम उस निष्ठुरता की प्रतिमूर्ति के विरह में ठोकरें खाते फिर रहे हो, यही न कुमार ?’

कुमार धीरे से एक निश्वास लेकर बोला ‘और एक दिन मुझको उसका एक पत्र मिला । उसमें लिखा था—

प्रियतम,

मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊं कि मैथ्या के षड्यंत्र में मेरा किंचित भी हाथ न था । मैंने जब उस दिन तुम्हारा प्रस्ताव उनके सामने रखा तो वे एकाएक चुप हो गये । मैंने अनुमान लगाया कि वे एक अपरिचित तथा अन्य जाति के व्यक्ति के साथ मेरा विवाह नहीं करना चाहते ।

एक दिन उन्होंने एकाएक बाहर जाने की तैयारी कर दी । मैं जानती थी कि वे तुम्हें छोखा देकर जा रहे हैं ।

प्रदर्शनी—

किन्तु मैं विवश थी। यदि तुम्हारे रुपये उन पर बाकी न होते तो कदाचित् मैं तुम्हें सब कुछ बतला देती, किन्तु इसके परिणाम को सोचकर मैं भैया पर विपत्ति लाने के लिए तैयार न हुई। मैंने अपना प्रेम, अपना प्यार सभी कुछ उन पर न्योछावर कर दिया। कैसी बुरी थी वह घड़ी जब हम तुम मिले थे। अस्तु—

हम लोग यहां से सीधे गोरखपुर पहुंचे। भैया ने पहिले ही से वहां अपने व्यापार का प्रबंध कर लिया था। हम लोग वहीं रहने लगे। मैं बराबर अस्वस्थ रहने लगी। मेरा हृदय तो पहिले ही से टूट गया था, अब शरीर भी टूटने लगा। मेरी ऐसी दशा देखकर भैया ने मेरा विवाह कर दिया। यह है मेरी राम कहानी।

मैं केवल अपनी परिस्थिति साफ करने के लिए यह पत्र आपको लिख रही हूं। मैं जानती हूं कि मैंने आपका दिल तोड़ दिया है, आपका सोने का संसार उजाड़ दिया है तथा आप जैसे भोले मानव को धोखा दिया है, किन्तु साथ ही यह भी कह सकती हूं कि मैंने भी अपना सब कुछ खो दिया है। मेरे पति मेरा शरीर ही पा सके हैं, हृदय तो न जाने कब से दूसरे के अधिकार में है।

अब कदाचित् इस जीवन में आपसे मेरी भेंट न होगी, और न होना उचित है। मैं किस प्रकार अपना मुंह दिखा सकूंगी।

एक प्रार्थना है—भैया से अब आपको रुपया मिलने की

आशा नहीं है, क्योंकि वे उसे देने की शक्ति ही नहीं रखते । आप उन्हें यदि क्षमा कर सकें तो बड़ा अच्छा हो । दूसरी प्रार्थना यह है कि आप भविष्य में कभी मुझसे मिलने की चेष्टा न करें, क्योंकि इससे मेरा और मेरे पति दोनों ही का भविष्य नष्ट हो जायगा ।

क्या प्रेम के नाने में आपसे इन दोनों बातों की भीख पा सकूंगी ।

आपकी—

रमा'

विजय बोल उठा 'फिर तुम्हारी भेंट हुई कभी ?'

सिर हिलाने हुए कुमार बोला 'नहीं । आज इस पत्र को मिले ३ वर्ष हो गये किन्तु मुझे उसका किसी प्रकार का भी पता न मिला । और उसने न मिलने की प्रार्थना भी तो की है ।'

विजय बोला 'इस प्रकार तो तुम्हें गहरा धोखा ही दिया गया है कुमार !'

एक सांस लेकर कुमार बोला 'इस घटना ने मुझे विरक्त बना दिया है । मैं पटना छोड़कर प्रयाग लौट गया । पिताजी विवाह के लिए जोर देने लगे, किन्तु उसमें मेरी कोई रूचि न देखकर वे चुप हो गये । घर में पड़े पड़े जी न लगता था, अतएव सोचा, चलो कुछ दिन तुम्हारे ही पास रहूँ । बस आज सबेरे तुम्हारे पास पहुँच गया ।'

विजय खड़ा होकर बोला 'अच्छी बात है । इस

विषय पर फिर बात करूंगा। कालेज जा रहा हूं, तुम आराम करो कुमार। किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो अपनी भाभी से मांग लेना। संकोच मत करना।'

विजय कपड़े पहिनकर कालेज चला गया। कुमार गद्दे पर लेटकर आराम करने लगा। भूली हुई याद आज फिर उसके हृदय को व्यथित करने लगी। वह चुपचाप स्मृति-नद में पड़ा पड़ा स्नान करने लगा।

लगभग ३ बजे नौकर ने आकर कहा 'चाय लाऊं बाबूजी।'

कुमार लेटे ही लेटे बोला 'अभी जल्दी क्या है? बाबूजी को भी आ जाने दो।'

नौकर बोला 'बहूजी ने कहा है कि वे ६ बजे तक आयेंगे। आप चाय पी लें।'

'अच्छा ले आ' लेटे ही लेटे कुमार ने कहा।

नौकर चला गया। थोड़ी देर में वह चाय और नाश्ता ट्रे में मजाकर ले आया।

कुमार चाय पीने लगा।

❁

❁

❁

दूसरे दिन सवेरे ही कुमार ने चलने की तैयारी कर दी। विजय ने आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए कहा 'हैंय ! यह क्या ? तुमने तो कुछ दिन रहने के लिए कहा था न !'

कुमार बोला 'नहीं विजय, मैं अब न ठहरूंगा। इस आतिथ्य-सत्कार के लिए तुम्हें और भाभीजी दोनों को

धन्यवाद। भाभीजी बड़ी अच्छी हैं, उन्हें सुखी करने की चेष्टा करना।'

कुमार चल दिया। विजय उसका मुंह देखता रह गया।



कुमार सेकिंड क्लास के कम्पार्टमेंट में अकेला चला जा रहा है। वह सदा की अपेक्षा आज अधिक चिंतित है।

वह मन ही मन सोचने लगा 'विजय को पाकर वह अवश्य सुखी है। अच्छा हुआ जो उससे मेरी भेंट न हुई। वह देखने में सुखी मालूम पड़ रही थी। और मैं—मैं—मैं कदापि उसका भविष्य नष्ट न करूंगा। साथ में विजय के भविष्य का भी तो प्रश्न है? मेरा चला आना ही ठीक था।'

सम्बलूट

मैंने जिस दिन ईस्टर्न हाई स्कूल का चार्ज लिया था उसी दिन मि० गुप्ता बोल उठे थे 'आप यहां कैसे फंसे आकर बिरजू बाबू ?'

मि० गुप्ता स्कूल के इंग्लिश टीचर थे और थे मेरे पुराने मित्र ।

मैं हंसकर बोला 'क्यों, क्या हुआ ?'

मि० गुप्ता ज़रा गम्भीर होकर बोले 'सच ही बतला दू बिरजू बाबू ? यह जगह किसी भले ईमानदार व्यक्ति के लिए नहीं है ।'

मुझे सदैव अपनी शक्ति पर अटल विश्वास रहा है । मेरा यह दावा था कि यदि मनुष्य स्वयं ईमानदार और कर्तव्यपरायण है तो कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता । रही अपने अफसरों को संतुष्ट और प्रसन्न रखने की बात, सो संसार में कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसे अपने कला-कौशल से प्रसन्न और संतुष्ट न रखा जा सके ।

मैं बोल उठा 'अब तो आ ही गया हूँ। प्रयत्न करके देखूंगा कि सफलता मिलती है या नहीं?'

मि० गुप्ता ने कदाचित् मेरी बातों में अहंकार के कीटाणु पाये। बोले, 'अच्छी बात है! कदाचित् आपमें कोई विशेष गुण हो।'

मैं चुप रहा।

उसी दिन शाम को सेक्रेटरी महोदय ने मुझसे मिलकर कहा 'स्कूल में काम अधिक नहीं है मि० वर्मा। आपका जैसा योग्य व्यक्ति बड़ी सरलता से अपना कर्तव्य पूरा कर सकता है। आपको जिस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता होगी, मैं दूंगा।'

मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। वे बोले 'इस स्कूल के टीचर बड़े काम चोर हैं। आपको स्वयं ही इस बात का अनुभव हो जायगा। आप प्रारम्भ ही से कड़ा शासन करें जिसमें सुव्यवस्था कायम करने में आगे चलकर आपको परेशान न होना पड़े।'

मैं बोल उठा 'ऐसा ही करूंगा।'

वे चले गये। मैंने सोचा 'इसी आदमी की इतनी बुराई करते थे मि० गुप्ता? स्वयं ठीक से काम न करते होंगे और दोष देते हैं सेक्रेटरी महोदय को। मैं तो वास्तव में कड़ा शासन ही करूंगा। इन लोगों को ज्यादा सिर चढ़ाना ठीक न रहेगा।'

और दूसरे ही दिन से मैंने अपने शासन का नमूना

दिखलाना शुरू कर दिया। अध्यापकों को दूना काम दिया करने के लिए, स्कूल-क्लर्क के हिसाब में पचासों गलतियां निकाल दीं तथा चपरासियों को डांट फटकार सुना कर उन्हें ठीक से काम करने की चेतावनी दे दी।

अध्यापकों ने हंसकर कहा 'अभी नये आये हैं न? चार दिन बाद ही हम लोगों की शरण आ जायेंगे।'

चपरासियों ने कहा 'साहब ज़रा बेढब मालूम पड़त है। जब तक तनखाह न बटी तब तक कोरी फटकार से काम न चली। हमहूँ लोग अपने अपने घर बैठ रहब।'

क्लर्क ने सिर खुजलाते हुए कहा 'बेकार की गलतियां निकाली हैं ढूँढकर। अभी इन्हें नहीं मालूम कि सेक्रेटरी साहब हैं किस किशम के आदमी।'

(२)

मैं शान के साथ हेडमास्टरी कर रहा था। किसी ने भी मेरे मार्ग में रोड़े अटकाने की चेष्टा नहीं की। अध्यापक भी चुपचाप काम कर रहे थे। किसी की क्या मज्जाल कि बोल तो जाय।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने मुझसे कहला भेजा कि मुझे एक नौकर चाहिए। उनका नौकर छुट्टी पर गया था अतएव ४-५ दिन के लिए नौकर चाहते थे।

मैंने मुरली चपरासी को बुलाकर कहा 'देखो जी, तुमको ४-५ दिन तक सेक्रेटरी साहब के यहां काम करना है। उन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो।'

मुरली थोड़ी देर तक तो चुपचाप खड़ा रहा फिर बोला 'जो हुकुम ।'

वह चला गया। मुरली हमारे स्कूल में सब से ज्यादा काम करने वाला आदमी था। मैंने समझ लिया कि सेक्रेटरी साहब संतुष्ट हो जायेंगे।

तीन चार दिन बाद सेक्रेटरी साहब मुझसे मिले। मैंने कहा 'नौकर तो ठीक काम कर रहा होगा ?'

वे मुह बनाकर बोले 'आदमी कामचोर मालूम पड़ता है। न जूठे बर्तन छूता है और न पानी भरता है। ये लोग तो मुफ्त में खाना जानते हैं। आप इनसे सस्ती से काम लिया करिये वर्मा साहब।'

मैं जानता था कि मुरली के विषय में यह बात गलत है, फिर भी बोला 'आप ठीक कहते हैं। कहिये तो दूसरा आदमी भेज दूँ ?'

वे बोले 'नहीं, रहने दीजिये उसी को। काम धीरे-धीरे ठीक हो जायगा।'

और वे चले गये। इधर ४ दिन के चार महीने हो गये किन्तु मुरली को उनके घर से छुटकारा न मिला। मैंने सोचा, मुझे क्या करना है ?'

एक दिन फिर कहलवाया गया कि स्कूल के प्रेसिडेंट साहब को थोड़े दिनों के लिए एक चपरासी की आवश्यकता है।

अब मैं ज़रा परेशान हुआ। स्कूल में कुल चार

चपरासी थे। उनमें से मुरली तो चला गया अब रह गये तीन। फिर भी झख मारकर बैजू को उनके यहां भेजना पड़ा। अब दो ही चपरासियों से स्कूल का काम किसी तरह चल रहा था। महीने की पहिली तारीख को मुरली और बैजू स्कूल आते और वेतन लेकर चले जाते।

एक दिन मैंने डरते डरते सेक्रेटरी साहब से नौकरों का प्रश्न छोड़ा। वे बोले 'तो आप एकाध नौकर और रख लीजिये। तकलीफ क्यों उठाते हैं?'

नौकरों का सवाल बड़ा टेढ़ा है। एक तो नौकर वैसे ही नहीं मिलते फिर तनख्वाह दी जाती थी उनको कम। कहां से नौकर मिलते? किसी प्रकार वैसे ही लस्टम-पस्टम काम चलता रहा।

घर में श्रीमतीजी अलग नाक में दम किये हुए थी। कहती 'चार चार नौकर स्कूल में हैं मगर सारा काम घर का मुझी को करना पड़ता है। सभी अपने यहां एक एक नौकर रखे हुए हैं—सेक्रेटरी भी और प्रेसीडेंट भी—आप ही को न जाने क्यों शर्म लगती है।'

मैं कहता 'तुम भी एक नौकर रख लो न? २०-२५ रुपया जो लेगा दे दूंगा।'

वे कहतीं 'मैं क्यों रुपये खर्च करके नौकर रखूँ? मैं तो स्कूल का चपरासी चाहती हूँ।'

अब बताइये मैं उनसे क्या कहता? अगर स्कूल का एक चपरासी उन्हें भी भेज देता तो कदाचित् स्कूल में झाड़ू

भी मुन्नी को लगाना पड़ती ।

(३)

एक दिन प्रेसीडेंट साहब स्कूल का निरीक्षण करने आये । मैंने सुन रखा था कि वे बहुत सफाई पसंद आदमी हं । मैंने उनके आने के पहिले दो तीन मजदूर लगवाकर स्कूल को चमाचम कर दिया । सभी को कायदे से काम करने का आदेश दिया और उनकी प्रतीक्षा में बाहर ही टहलता रहा ।

प्रेसीडेंट साहब आये । स्कूल की बिल्डिंग को देखने के बाद उन्होंने कहा 'आपकी बिल्डिंग बहुत गंदी है । आप इसकी पुताई और रंगाई करवा डालिये वर्मा साहब ।'

मैं बोला 'जी ! बहुत अच्छा ।'

वे बोले 'मेरे पास बहुत बढ़िया कारीगर है, अगर आप चाहें तो उसको ठेका दे सकते हैं । मेरे ख्याल से लगभग दो हजार रुपया पुताई और मरम्मत में लगेगा ।'

मैं बोल उठा 'मगर रुपया——'

वे बोल उठे 'सब प्रबंध हो जायगा । बिल्डिंग की मरम्मत और पुताई भी तो बहुत जरूरी है । मैं कल ही कारीगर को भेजूंगा ।'

मैंने कह दिया 'बहुत अच्छा ।'

वे चले गये ।

वास्तव में स्कूल-फंड में इतना रुपया न था कि बिल्डिंग पर दो हजार व्यय किये जा सकते और फिर बिल्डिंग अभी

काफी साफ थी।

दूसरे ही दिन मैंने एक मिस्त्री को बुलवाकर बिल्डिंग दिखलाई। उसने हिसाब लगाकर कहा 'लगभग आठ-नौ सौ में सारा काम हो जायगा।'

मैं प्रसन्न हो गया। मैंने सोचा कि इतने कम में काम हो जाने की बात सुनकर प्रेसीडेंट साहब बहुत खुश होंगे।

शाम को ही एक कारीगर ने मुझे एक पत्र लाकर दिया। उसमें लिखा था :-

'मि० वर्मा,

मैं आपके पास कारीगर भेज रहा हूँ। यह ढाई हजार में सब काम कर देगा। यह बहुत होशियार है, मैंने इसे ठेका दे दिया है। यह कल से काम करेगा।'

मैं चुप रह गया। वह बोला 'कल ही सवेरे आप सामान मंगवा दीजियेगा। मैं काम शुरू कर दूंगा।'

मैंने खिसियाने से होकर कहा—'अच्छा।'

सामान आ गया। तीन चार दिन तक तो वे कारीगर काम करते रहे, फिर एकाएक आये ही नहीं। चार पांच दिन बाद जब वे लोग फिर आये तो मैंने पूछा 'इतने दिन तुम लोग कहाँ रहे?'

उनका मुखिया बोला 'प्रेसीडेंट साहब के बंगले पर काम कर रहे थे। अभी हम लोग एक हफ्ता वहाँ काम और करेंगे। यहाँ से सामान ले जाने के लिए आये हैं।'

थोड़ी देर चुप रहकर मैं बोला 'तो फिर आज भी

तुम लोगों की हाजिरी न लिखी जाय ?'

उनका मुखिया बोला 'हाजिरी तो यहां रोज लिखी जायगी। चाहे हम लोग यहां काम करें और चाहे वहां। प्रेसीडेंट साहब का हुकुम है।'

मैं सन्न रह गया। वे लोग सामान लेकर चले गये।

पूरे १५ दिन तक स्कूल के मसाले, पैसे और मजदूरों से प्रेसीडेंट साहब के बंगले में कमरा बनता रहा। १५वें दिन मजदूर और कारीगर स्कूल में आकर अपनी मजदूरी चुकती करके ले गये।

मुझे यह कुछ ज्यादा अच्छा न लगा। स्कूल की मरम्मत की ओर भी मेरी कुछ दिलचस्पी न रह गयी। मजदूर स्कूल में काम करते रहे।

मैंने इसका जिक्र मि० गुप्ता से किया।

हंसकर मि० गुप्ता ने कहा 'आप तो बड़े भोले हैं बर्मा साहब। अरे, जब प्रेसीडेंट या सेक्रेटरी साहब को अपने बंगले की मरम्मत करवाना होती है तभी तो स्कूल में मरम्मत लगायी जाती है। जब उन्हें अपने बंगले फुलवाना होते हैं तो बस समझ लीजिये कि स्कूल में भी पुताई अवश्य होगी। आप अभी नये आये हैं, धीरे धीरे सब कुछ समझ जायेंगे।'

कहकर उन्होंने एक ठहाका लगाया और बोले 'इन्ही बातों की वजह से हमारे पुराने हेडमास्टर मि० भट्टाचार्य की इन लोगों से पटी नहीं। भट्टाचार्य भी बबने वाला

आदमी न था। वह इन लोगों की दाल न गलने देता था।

मैंने पूछा 'वे चले क्यों गये ?'

मि० गुप्ता ने कहा 'उन्हें यहां से अच्छी जगह मिल गयी। यहां हमेशा अनबन रहती थी, अतएव वह चले गये।'

अब मेरी परेशानियां बढ़ रही थीं। यह मैं जानता हूं कि यदि कोई खाऊ आदमी मेरी जगह पर होता तो अपना बहुत कुछ लाभ कर सकता था, किन्तु कदाचित् मैं जीवन में ऐसा न कर सकूंगा। और फिर भगवान् भी तो सब कुछ देखता है।

तीन महीने तक मरम्मत लगी रही। बीच में एक दिन सेक्रेटरी महोदय की श्रीमतीजी ने कहलवा भेजा कि 'दो कमरे हमारे भी पुतेंगे।'

लूट थी लूट ! खैर, उनके कमरे भी पुत गये। राम राम करके मजदूरों से छुट्टी मिली।

काम समाप्त हो जाने पर एक दिन प्रेसीडेंट बिल्डिंग देखने आये। देखने के बाद वे बोले 'मन्नालाल कारीगर दाम तो ज्यादा लेता है मगर काम बहुत बढ़िया करता है। ढाई हजार में उसने इतना अच्छा इस बिल्डिंग को बनाया है कि बिलकुल नयी मालूम पड़ती है।'

आज मुझ में पहिले का सा उत्साह न था। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा 'आपकी क्या राय है वर्मा साहब ?'

तो मैंने धीरे से कह दिया 'जी हाँ।'

(४)

अब मैं अनुभव कर रहा था कि वास्तव में मैं यहाँ आकर फंस गया हूँ। जो कुछ तरक्की मैं स्कूल की करता था उसका श्रेय तो प्रेसीडेंट और सेक्रेटरी को मिल जाता था और जो कुछ बुराइयाँ रह जाती थीं उसके बारे में सेक्रेटरी और प्रेसीडेंट मुझे मीठी झिड़कियाँ सुना जाते थे। कभी कभी तो मेरा चित्त इतना ऊब उठता था कि मैं भाग जाने की सोचता। मगर यह सोचकर कि लोग हँसेंगे मैं चुप रह जाता।

धीरे धीरे पचासों प्रकार की मांग आने लगीं। सेक्रेटरी के लड़के आते और कहते 'मास्टर साहब, कागज चाहिए कापियों के लिए।'

कभी आकर कहते 'कुछ पेन्सिलें हों तो दे दीजिय।'

कभी कहते 'दफ्तरी से कंडीलें बनवा दीजिये।'

कभी कहते 'बिजली के मिस्त्री को माताजी ने बुलवाया है।'

मुझे सभी फरमाइशें पूरी करनी पड़तीं। मैं केवल मन ही मन झल्लाकर रह जाता।

सेक्रेटरी साहब की लड़की की शादी थी। स्कूल का लगभग आधा फरनीचर उनके घर पहुँच गया। लड़कों को बैठने में तकलीफ होती थी किन्तु क्या किया जाय, यह तो उन्हें भी सोचना चाहिए था।

प्रदर्शनी—

दूसरे दिन अखबार में स्कूल और मेरी बड़ी कड़ी टिप्पणी की गयी। सम्पादक महोदय ने भी सारा दोष मुझ पर रखा।

मैं चुप रहा।

दूसरे दिन ही सेक्रेटरी साहब मेरे पास आकर बोले 'कितने बिजली के पंखे मुझे दे सकते हैं आप वर्मा साहब !'

मैं तो झल्लाया हुआ था ही, बोला 'मगर बिजली के पंखे देना तो ज़रा मुश्किल होगा।'

मुंह बनाकर सेक्रेटरी साहब ने कहा 'क्यों ? तीन-दिन के लिए ही तो चाहिए।'

कुछ सोचकर मैंने कहा 'दो पंखे दे सकता हूँ—एक अपने कमरे का और दूसरा क्लर्क साहब के कमरे का।'

सिर हिलाकर वे बोले 'मुझे तो आठ पंखे चाहिए, इससे कम में काम न चलेगा।'

साहस करके मैंने अखबार उठाकर उनके सामने रख दिया जिसमें फरनीचर के सम्बन्ध में टोका-टिप्पणी की गयी थी। उसे पढ़कर गुस्से में उन्होंने अखबार एक ओर कर दिया और बोले 'गधे हैं यह लोग ! इन्हें बकने दीजिये।'

थोड़ी देर तक तो वे बैठे कुछ सोचते रहे, फिर उठकर चले गये।

मैंने सोचा 'चलो जान बची।'

दो पहर के बाद जब मैं खाना खाकर स्कूल लौटा तो देखता हूँ कि मेरे दफ्तर में पंखा नहीं है। मैंने सोचा

‘चलो ले जाने दो—बच्चों को तो तकलीफ नहीं हुई ।’

थोड़ी देर में दफ्तरी ने आकर कहा ‘सेक्रेटरी साहब ने बिजली के मिस्त्री को भेजा था । वह पंखे उतार ले गया ।’

मैंने धीरे से कहा ‘कै पंखे ले गया—दो ?’

वह बोला ‘जी नहीं । वह तो स्कूल के सभी पंखे उतार ले गया ।’

मेरे आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगा । यह सब कुछ मेरी सहन-शक्ति के बाहर था ।

और उसी दिन मैंने इस ‘सभ्य-लूट’ के विरोध में हेड-मास्टरी से त्याग-पत्र दे दिया ।



प्रतिज्ञा

श्रीकान्त और रजनी के सिर लज्जा से झुके हुए थे । श्याम बाबू ने क्रोध-पूर्ण नेत्रों से अंगारे बरसाते हुए कहा, 'श्रीकान्त, तुम्हारा यह विश्वासघात !'

उसने झपटकर श्याम बाबू के दोनों पैर पकड़ लिये और बोला, 'मैं अपराधी हूँ । मुझे क्षमा किया जाय ।'

श्याम बाबू का क्रोध कुछ कम हुआ । वे क्षण भर चुप रहकर बोले, 'तुम नासमझ हो श्रीकान्त ! मैंने तुमपर विश्वास करके तुम्हें रजनी को पढ़ाने के लिए रखा था । मुझे तुम्हारे जैसे व्यक्ति से ऐसी आशा न थी ।'

श्रीकान्त के हृदय में आज प्रथम बार ही रजनी के प्रति पाप का भाव उदय हुआ था । प्रेमावेश में उसने एकाएक उसे अपनी गोद में खींच लिया था और तभी आ गये श्याम बाबू । पहिला पाप ही पकड़ गया था । रजनी तो पानी-पानी हो गयी थी ।

श्याम बाबू समझदार व्यक्ति थे । उन्होंने कहा,

—प्रतिज्ञा

‘तुम्हारा और रजनी का विवाह असम्भव-सा है श्रीकान्त !
यदि.....’

और धीरे से श्रीकान्त के मुह से निकल गया, ‘क्यों ?’

श्याम बाबू बोले, ‘वह यों कि हमारी और तुम्हारी स्थिति में पृथ्वी और आकाश-सा अन्तर है । तुम्हारे जैसे व्यक्ति को जिसके पास विस्वाभर भी भूमि बैठने को न हो, लक्षपति श्यामलाल की कन्या कैसे दी जा सकती है ? सामाजिक व्यवस्था में लाख सुधार हो जाय, किन्तु बड़े आदमी की कन्या कभी कंगाल को न दी जा सकेगी ।’

श्रीकान्त की दशा लगभग कंगाल-सी ही थी । उसने श्याम बाबू की बातों को समझा और लज्जा से सिर झुका लिया ।

अपनी बातों का प्रभाव पड़ता देख श्याम बाबू प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा, ‘तुम भले लड़के हो, तुम्हें अभी संसार में बहुत कुछ करना है श्रीकान्त ! अपना चरित्र खोकर मनुष्य अपनी उन्नति के सारे साधनों को ही समाप्त कर देता है । तुमने आज अपनी दुष्चरित्रता का परिचय देकर स्वयं अपना ही अहित किया है । तुम भले घरों में जाने योग्य नहीं हो श्रीकान्त !’

श्रीकान्त अपराधी की भांति खड़ा हुआ था । श्याम बाबू बोले, ‘अच्छा, तुम्हीं बोलो, इस अपराध का तुम्हें क्या दंड दिया जाय ?’

श्रीकान्त चुप रहा । रजनी उठकर अन्दर जाने

लगी। उसे हाथ से रोकते हुए श्याम बाबू बोले, 'ठहरो, रजनी, श्रीकान्त के साथ ही साथ तुम्हें भी दंडित होना पड़ेगा।'।

रजनी का अपराध केवल इतना ही था कि उसने श्रीकान्त की हरकतों का विरोध न किया था। वह खड़ी-खड़ी कांप रही थी।

श्याम बाबू दृढ़ता के साथ बोले, 'मैं तुम लोगों को आज ऐसा दंड दूंगा जिसे तुम्हें जीवन भर याद रखना पड़ेगा। तैयार हो श्रीकान्त ?'

अपराधी की भांति सिर झुकाये हुए श्रीकान्त बोला, 'मैं अपराधी हूं, और हरप्रकार के दंड को महर्ष स्वीकार करने के लिए भी तैयार।'।

श्याम बाबू कुछ मुस्कराये और बोले, 'अच्छी बात है। तुम दोनों आज यहीं, इसी समय, मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि आज से तुम दोनों एक दूसरे को भाई-बहिन समझोगे ?'।

श्रीकान्त आश्चर्य से श्याम बाबू के मुह की ओर देखने लगा। श्याम बाबू ने कहा, 'मुझे आशा है कि तुम प्रतिज्ञा करके उसपर जीवनभर दृढ़ रहोगे।'।

श्रीकान्त चुपचाप खड़ा रहा। श्याम बाबू ने कहा, 'और यदि तुमने यह दंड स्वीकार न किया तो तुम्हें अभी, इसी समय, मेरे घर से काला मुंह करके निकल जाना पड़ेगा और जीवन पर्यन्त फिर कभी मुझे मुह न दिखा सकांगे।'।

उसने रजनी की ओर देखा और रजनी ने उसकी ओर।

बुड़े श्याम बाबू की आंखें सभी कुछ देख रही थीं ।

श्रीकान्त ने धीरे-से आंख उठाकर फिर रजनी की ओर देखा और पराजित योद्धा की भांति मंद-स्वर में कहा—
'बहिन !'

रजनी के मुंह से निकला —'भाई !'

श्याम बाबू ने प्रसन्न होकर कहा, 'शाबास । आशा है श्रीकान्त बाबू, तुम अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहोगे ।'

श्रीकान्त के मुंह से निकला, 'निश्चय ही ।'

श्याम बाबू चुपचाप वहां से चले गये ।

(२)

श्रीकान्त साधारण स्थिति का एक सुशिक्षित नवयुवक था और श्याम बाबू मुलतान के एक प्रमुख तथा सम्पन्न वकीलों में से थे । श्रीकान्त की उनसे बहुत दिनों की जान पहिचान थी । उसे कष्ट में देखकर श्याम बाबू ने ४०) मासिक पर अपनी पुत्री रजनी को पढ़ाने के लिए नौकर रख लिया था । श्रीकान्त सीधा-सादा, नम्र तथा सरल स्वभाव का था । श्याम बाबू को उसकी सच्चरित्रता पर अटल विश्वास था ।

रजनी की अवस्था इस समय १६ वर्ष की थी और उसका लवण्य प्रशंसा की वस्तु । वह मुग्धा-सी बाला धीरे धीरे श्रीकान्त के हृदय में घर कर ही गयी । वह पढ़ाते समय उसका मुंह निहारता ही रहता । इसके विरुद्ध

प्रदर्शनी—

रजनी अज्ञान बौवना-सी थी। उसने मास्टर साहब में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन कभी नहीं अनुभव किया। अचानक उस दिन श्रीकान्त सुध-बुध खो ही तो बैठा। उसने सहसा रजनी को खींचकर अपनी गोद में ले लिया—और तभी आगये किसी कार्य वश श्याम बाबू वहां उस कमरे में।

इस घटना के बाद भी श्रीकान्त रजनी को उसी प्रकार पढ़ाता रहा, किन्तु उसके हृदय में बार बार अब यह नया प्रश्न उठता था कि 'क्या वास्तव में वह रजनी को प्यार करने योग्य न था?' वह श्याम बाबू की ही बिरादरी का था और उनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध हो सकता था।

श्रीकान्त के हृदय में उस दिन की प्रतिज्ञा के बाद अवश्य परिवर्तन हो गया था। वह रजनी को अब बहिन के ही रूप में देखने की चेष्टा करता। इधर रजनी में दूसरे ही प्रकार का परिवर्तन हुआ। जिस बात से वह अबतक अनभिज्ञ थी वह उसे अब ज्ञात हो गयी थी। वह समझ गयी थी कि श्रीकान्त उससे कितना प्रेम करता है। अब वह जब पढ़ने बैठती तो बार बार श्रीकान्त की ओर किसी और भाव से देखने लगती। अब उसके हृदय में प्रेम अंकुरित हो गया था। श्रीकान्त ने उसके भावों को समझा और स्पष्ट कह दिया एक दिन कि 'तुम मेरी बहन हो रजनी ! व्यर्थ में विपत्ति को बुलाने की चेष्टा न करो।'

धीरे धीरे श्याम बाबू का फिर से श्रीकान्त पर

प्रगाढ़ विश्वास जम गया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि श्रीकान्त मला लड़का है और अपनी प्रतिज्ञा पर अवश्य दृढ़ रहेगा। पूर्ण विश्वास जम जाने पर श्याम बाबू ने उसका वेतन भी ६०) कर दिया और कुछ दिनों बाद उसे अपने घर में ही रहने के लिए एक कमरा दे दिया।

नगर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो रहा था और ऐसा प्रतीत होता था कि कदाचित् ही कोई हिन्दू जीवित बचे। मुलतान की सड़कें निरीह हिन्दू नर-नारियों के रक्त से रंजित थीं। तथा परिवार के परिवार ज़बरन् मुसलमान बनाये जा रहे थे, सैकड़ों मकान लूटकर फूंक दिये गये।

श्याम बाबू का मकान भी गुंडों ने घेर लिया। सभी घर वालों को बुरी तरह पीटा गया, मकान का सामान लूट लिया गया तथा जवान लड़कियों की इज्जत उतार ली गयी। श्याम बाबू और श्रीकान्त ने अपनी आंखों से रजनी पर किये गये अत्याचारों को देखा। गुंडों ने श्याम बाबू और श्रीकान्त को पीट-पाटकर घर से निकाल दिया तथा सारी सम्पत्ति, रजनी, उसकी छोटी बहिन कान्ता तथा उसकी जवान भानजी करुणा पर अपना अधिकार जमा लिया।

श्याम बाबू ने गिड़गिड़ाकर कहा 'हमारा सब कुछ ले लीजिये, लेकिन हमारी लड़कियों को छोड़ दीजिये।

एक गुंडे ने हंसकर कहा 'अबे हिन्दू के बच्चे, अब ये तेरे किस काम की रहीं।'

अंत में श्याम बाबू की हालत पर गुंडों को कुछ दया आ गया। उन्होंने उन दोनों को छोड़ दिया और सारी सम्पत्ति तथा उनकी भानजी करुणा को लेकर चले गये। एक गुंडे को करुणा पसंद आ गयी थी, अतएव वह न छूट सकी।

महीने भर तक भटककर श्याम बाबू सपरिवार दिल्ली पहुँचे। सभी का बुरा हाल था; श्याम बाबू की तो मार से हड्डी हड्डी चूर हो गयी थी। रजनी और कान्ता अत्याचार और कष्ट से सूखकर कांटा हो गयी थीं। धन के नाम पर इन लोगों के पास एक फूटी कौड़ी भी न थी। इस समय श्रीकान्त ने इस परिवार की जी तोड़कर सहायता की।

दिल्ली पहुँचकर पहिले तो ये लोग शरणार्थी-शिविर में ठहरे, किन्तु थोड़े ही दिनों में श्रीकान्त को एक अच्छी-सी नौकरी मिल गया। सब्जी मंडी में एक छोटा-सा मकान लेकर ये लोग रहने लगे।

(३)

श्याम बाबू का स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि उनका फिर से उठना कठिन हो मालूम पड़ता था। अपनी तथा अपनी बेटियों को दुर्दशा का जो भोषण दृश्य वे देख चुके थे उससे उन्हें अब जीने की आकांक्षा न रह गयी थी। जिस श्रीकान्त को उन्होंने पाला था उसी के दुकड़ों पर आज उनके परिवार का पोषण हो रहा था। उनका हृदय फटने-

सा लगता था। इधर रजनी और कान्ता की चिन्ता उन्हें खाये जा रही थी। 'इसका क्या भविष्य होगा ? हे भगवान् !'

एक दिन उन्होंने श्रीकान्त को अकेले ही पास बुलाकर कहा 'एक बात तुमसे कहना है बेटा ?'

'कहिये' श्रीकान्त ने धैर्यपूर्वक कहा।

श्याम बाबू आंसू पोछते हुए बोले 'मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी हूँ श्रीकान्त ! एक बार मैंने अभिमान भरे हुए शब्दों में तुम्हें कंगाल कहा था, आज मैं उस बात की क्षमा मांगना चाहता हूँ।'

श्रीकान्त ने सूखी-सी मुस्कान के साथ कहा 'आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों करते हैं बाबूजी। मैं तो आपका वैसा ही श्रीकान्त हूँ जैसा पहिले था। मैं तो केवल अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ। आप व्यर्थ की चिन्ता में अपने शरीर को घुला रहे हैं।'

क्षण भर चुप रहकर श्याम बाबू बोले 'ऐसे तो मुझे तुम्हारे होते हुए कोई भी चिन्ता नहीं है बेटा, किन्तु मैं जब रजनी और कान्ता की बात सोचता हूँ तो मेरा हृदय कांप जाता है। इन आंखों को यह भी दृश्य देखना बड़ा था, कहते कहते बुड्ढा रो पड़ा। श्रीकान्त उनके सिरहाने जा बैठे और उनके हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए बोले 'आप चिन्ता न करें बाबूजी, मैं जो मौजूद हूँ।'

श्याम बाबू बड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले 'किन्तु इन

का क्या होगा बेटा ?'

श्रीकान्त स्वयं नहीं जानता था कि यह समस्या कैसे मुलझेगी किन्तु श्याम बाबू को सांत्वना देता हुआ बोला 'आप फिक्र न करें। सब अपने आप ठीक हो जायगा।'

श्याम बाबू थोड़ी देर बाद धीरे से श्रीकान्त का हाथ पकड़ते हुए बोले 'एक बात कहूं श्रीकान्त ?'

धड़कने हृदय से श्रीकान्त बोला 'कहिये !'

श्याम बाबू ने धीरे से कहा 'यदि उचित समझो तो तुम रजनी को स्वयं.....।'

और वे चुप हो गये। श्रीकान्त बोला 'मैं आपकी बात समझ रहा हूँ बाबूजी, किन्तु अब ऐसा होना असम्भव है।'

कुछ आश्चर्य के साथ श्याम बाबू बोले 'क्यों, क्या रजनी भ्रष्टा है इसलिए ? इसमें उसका दोष ?'

श्रीकान्त बोला 'उसे भ्रष्टा कौन कह सकता है बाबूजी ? वह तो मेरी बहिन है।'

आंखें फाड़कर श्रीकान्त की ओर देखते हुए वे बोले 'वह क्या कह रहे हो श्रीकान्त ?'

श्रीकान्त धीरे से बोला 'मैं जानता हूँ कि मुझे रजनी से दूर करने के लिए आने मुझसे ऐसी प्रतिज्ञा करवायी थी, किन्तु मैं उस प्रतिज्ञा को लांघ न सकूंगा।'

श्याम बाबू बोले 'वह तो उस समय की बात थी। आज मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम रजनी का जीवन नष्ट न करो।'

श्रीकान्त बोला 'आप क्षमा करें बाबूजी, मैं कभी इस प्रतिज्ञा को न तोड़ सकूंगा ।'

श्याम बाबू चुप रह गये ।

(४)

लाख चेष्टा करने पर भी श्याम बाबू श्रीकान्त को रजनी से विवाह करने के लिए राजी न कर सके । जिस बात को किसी समय उन्होंने अपन घर की मर्यादा रखने के लिए किया था उसी से आज उनकी मर्यादा नष्ट होने की सम्भावना थी । वे उस प्रतिज्ञा को अधिक महत्त्व न देते थे, किन्तु श्रीकान्त उस पर अटल था ।

एक दिन फिर झल्लाकर श्याम बाबू ने कहा 'यह प्रतिज्ञा केवल तुम्हारा बहाना मात्र है श्रीकान्त ! वास्तव में तुम अब उससे विवाह करना चाहते ही नहीं हो ।'

श्रीकान्त बोला 'आप इस प्रकार रजनी की प्रतिष्ठा पर बार बार हमला न करें । आपको मालूम होना चाहिए कि वह मेरी बहिन है ।'

श्याम बाबू बोले 'तो फिर तुम्हीं अपना विवाह क्यों नहीं कर डालते । मेरे न रहने के बाद ये लड़कियाँ किसके पास रहेंगी श्रीकान्त !'

सूखी-सी हंसी हंसकर श्रीकान्त बोला 'जब तक रजनी का विवाह न हो जाय मेरा विवाह होना आप असंभव ही समझें । पहिले बहिन का विवाह होगा और उसके बाद भाई का ।'

श्याम बाबू को श्रीकान्त की ये ऊंची बातें अधिक अच्छी न लगती थीं। वे निराश होकर बोले 'जो तुम्हारे जी में आये सो करो।'

श्याम बाबू अधिक दिन तक न चल सके। एक रात कष्टों दुखों और चिन्ताओं से संतप्त वह वृद्ध चल बसा। रह गये श्रीकान्त, रजनी और कान्ता।

पिता के बाद पुत्री ने अपना बोझ श्रीकान्त पर डालने की चेष्टा की। रजनी का यौवन फिर से लौट आया था। इस समय वह १७ वर्ष की सर्वांग सुन्दर नवयौवना थी। वह श्रीकान्त के जितने ही निकट होने की चेष्टा करती, वह उससे उतनी ही दूर भागता। रजनी यौवन और सौंदर्य के भार से दबी हुई निश्वासों भरती और श्रीकान्त उसे देखकर कष्ट से आह भरता। रजनी धीरे धीरे श्रीकान्त के लिए पागल-सी हुई जा रही थी। वह गति के दो दो बजे तक उसके पास बैठी रहती, अपनी व्यथा मूक भाषा में निरंतर प्रकट करती तथा बाद में निराश होकर बिस्तर पर जाकर लेट जाती। श्रीकान्त पर भी इसका प्रभाव था। वह भी धीरे धीरे घुल रहा था। एकादश बार तो उसका बांध टूटने ही को हो गया था किन्तु वह संभल गया।

उस दिन रजनी शृंगार यौवन और मस्ती की पराकाष्ठा पर थी। श्रीकान्त ने उसे देखा और देखते ही रह गया 'रजनी ! इतनी सुन्दर !!'

रजनी ने मुस्कराकर उसके हाथ में पान की गिलौरियां देते हुए कहा 'क्या देख रहे हो इस प्रकार मेरी ओर ?'

भाव में आकर श्रीकान्त बोला 'रजनी को देख रहा हूँ कि वह पूर्णिमा के कितनी सन्निकट है।'

मुस्कराकर रजनी बोली 'किन्तु रजनी का चन्द्र तो अभी उससे दूर है। अंधेरे की कालिमा में लिपटा हुआ वह अभी तो रजनी की ओर निहार भी नहीं रहा है।'

श्रीकान्त खिल उठा। धीरे से रजनी का हाथ पकड़कर बोला 'किन्तु चन्द्र रजनी का ही है।'

धीरे से रजनी ने उसके गले में अपनी दोनों मुन्दर बाँहें डाल दीं।

'भोजन तैयार है बहिन' कान्ता आकर बोली।

श्रीकान्त झट से अलग हो गया। उसका हृदय 'धड़-धड़' कर रहा था।

उस दिन रात भर उसे नींद नहीं आयी। उसने सोचा कि वह इस घर को छोड़ देगा और रजनी से कभी एकान्त में न मिलेगा।

वह बच गया। दूसरे दिन उसने रजनी से स्पष्ट कह दिया कि वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहेगा।

दिन बीत रहे थे।

श्रीकान्त भी घुल रहा था और रजनी भी। प्रतिज्ञा की दीवार के दो प्राणियों—दो प्रेमियों—को दो किनारों पर पटक दिया था। अब रजनी उससे अधिक बात नहीं

करती । श्रीकान्त भी खोया खोया-सा रहता है ।

एक दिन रजनी ने उससे कहा 'इसका अन्त क्या होगा ?'

श्रीकान्त सूखी हंसी हंसकर बोला 'अब अन्त ही समझ लो रजनी ।'

रजनी बोली 'विवाह क्यों नहीं कर लेते, सारे संसार की स्त्रियों से विवाह न करने की तो प्रतिज्ञा नहीं की है ?'

श्रीकान्त रजनी का व्यंग समझा, बोला 'और तुम क्यों नहीं कर लेती ?'

रजनी चुप रही; श्रीकान्त भी चुप रहा ।

रजनी अब क्षय-रोग के चंगुल में थी । वह धुल रही थी । श्रीकान्त समझ रहा था कि रजनी की हत्या का उत्तरदायित्व उस पर ही है ।

एक दिन वह पूछ बैठा 'अब क्या होगा रजनी ?'

रजनी सूखी हंसी हंसकर बोली 'क्या करोगे पूछकर ?'

श्रीकान्त बोला 'किन्तु क्या तुम दोषी मुझे ही समझती हो ?'

रजनी बोली 'हां । बुरा न मानियेगा श्रीकान्त बाबू यदि मैं कहूं कि पिता के अपराध का दंड पुत्री को क्यों दिया गया है ? अब अंत निकट है, यदि संतोषजनक उत्तर पा सकूं तो मृत्यु के समय शांति ही मिलेगी ।'

श्रीकान्त निरुत्तर था । रजनी बोली 'मैं तुम्हें क्षमा न कर सकूंगी श्रीकान्त ! पिता की एक साधारण-सी बात

को तुमने इतना तूल देकर मेरी और पिता दोनों ही की हत्या की है ।’

श्रीकान्त बोला ‘तुम जो चाहो सो कर सकती हो रजनी, किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा निभा सका ।’

मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व रजनी ने श्रीकान्त को बुलाकर कहा ‘क्षोभ, क्रोध, उपालंभ तथा प्यार को लेकर जा रही हूँ, किन्तु क्या मेरी अंतिम अभिलाषा पूर्ण कर सकोगे श्रीकान्त ?’

श्रीकान्त का गला भरा हुआ था । वह रजनी के मुख पर मृत्यु की स्पष्ट छाया देख रहा था । बोला ‘क्या है रजनी ? मैं तुम्हारी किसी भी अभिलाषा को जान देकर भी पूरा करूँगा । मेरी प्रतिज्ञा तो तुम जानती ही हो—कैसी भीषण होती है ?’

रजनी ने धीरे से कान्ता का हाथ उसके हाथ में देते हुए कहा ‘तुम्हारे प्रति मुझे किसी भी प्रकार का रोष नहीं है, किन्तु कान्ता अब तुम्हारी है । आशा है तुम.....’

श्रीकान्त नीचा सिर किये कुछ सोच रहा था । रजनी बोली ‘मैं सुख से मर सकूँगी श्रीकान्त ! क्या तुम ‘हां’ कह सकोगे ?’

श्रीकान्त के मुँह से निकला ‘हां’ और उसने कान्ता का हाथ थाम लिया ।

एक हलकी-सी मुस्कान के साथ जीवन-दीप बुझ गया ।

❀ इति ❀

